ञान



हिन्दीकारः—

नवरत्नश्रीगिरिधरशर्म्मा

झालरापाटन,

(राजपूताना.)

बागवान ।

(विद्वद्वर कवीन्द्र डाक्टर श्रीरवीन्द्रनाथ टागोर
के 'गार्डनर' का रूपान्तर)

हिन्दीकार:—

पण्डितवर श्रीगिरिधरशर्म्माजी काव्यालङ्कार

नवरत्नसरस्वतीभवन-झालावाड़

झालरापाटन, राजपूताना ।

प्रकाशक:—

"श्रीविजयधर्मलक्ष्मी-ज्ञानमन्दिर"

बेलनगंज—आगरा ।

प्रथम बार
२०००

वीर संवत् २४५०
वि० संवत् १९८१
धर्म संवत् २

मूल्य
१)

प्रकाशक

फूलचन्द दासी
क्यूरेटर
श्रीविजयधर्मलक्ष्मी ज्ञानमन्दिर
बेलनगंज-आगरा।

मुद्रक—
मोहनलाल बैद
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस,
बेलनगंज-आगरा।

समर्पण

हिन्दी-साहित्य में नित्यनूतनता

देखनेके प्रयासी रसिक-जनों

को यह

बागवान

जिसमें नित्यनूतनता की

छवि

झलमला रही है

प्रेमपूर्वक

समर्पित

है.

श्री ____________________

____

आपका ____________________

मेरा वक्तव्य

डाक्टर रवीन्द्रनाथ टागोर को कौन नहीं जानता। आप विश्वसाहित्याकाश के एक दिव्य नक्षत्र हैं। आपकी साहित्यप्रवृत्ति भांतिभांति की है। आप अनुवादक हैं, लेखक हैं, व्याख्याता हैं, समालोचक हैं, औपन्यासिक है, कहानीकल्पक हैं, नाटककार हैं, गीतिरचयिता हैं, सुगायक हैं, सुकवि है; इतना ही क्यों शिक्षा-परिष्कारक हैं और सब से बढ़कर हैं दीनबन्धु-दीनानाथ परमात्मा-के विश्वप्रेमप्रचारक मानव दूत। आपने अपने सहृदय-हृदयमोहन काव्यों द्वारा संसार को सात्विक सन्देश दिया है और दुखमें सुख मानने और सांसारिक कर्त्तव्यों के बन्धनों में परमार्थके दिव्य सुखों की झलक का अनुभव करने की अविनाशी और नित्यसनातन कूंची दिखलाई है। आपका हृदय विशाल, भावनायें (गुर्जर गिरा के गौरव * नान्हालाल दलपतराम कवि के समान) उच्चाकाश-विहारिणी और आशय निर्मल-अध्यात्मगम्य एवं गम्भीर हैं। आप भारतका गौरव, एशिया का अभिमान और संसार की सम्पत्ति हैं।

---

*जिन हिन्दी प्रेमियों को इस रससिद्ध, आकाश के उच्च-से-उच्च प्रदेश में विहार करने वाले कवि की भावनाओं का मजा लूटना हो वे 'जयाजयन्त' और 'उषा' को पढ़ें जो स्थानीय 'नवरत्नसरस्वतीभवन-से मिल सकती हैं।

आपकी **गीताञ्जलि** और **गार्डनर** नामक पुस्तकों का साहित्य-संसार में बड़ी प्रतिष्ठा है। इन पर खूब विचार किया गया है।

संसार चकित है, योरप मुग्ध है, चीन-जापान चमत्कृत है, भारत फूले अंग नहीं समाता। विद्वद्वर डा॰ श्रीगंगानाथ झा एम॰ ए॰, डी॰ एल-टी॰ (मीमांसा-श्लोकवार्तिक, तन्त्रवार्तिक, न्याय-कन्दली काव्यप्रकाश॰ आदिके अंग्रेजी अनुवादक और संस्कृत-साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान् वाइस चांसलर इलाहाबाद यूनी-वर्सिटी) **गीताञ्जलि** के गुण वर्णन करना अपनी शक्तिके बाहर का काम मानते है और सहृदयवरेण्य प्रोफेसर श्रीअमरनाथ झा, उस अंग्रेजी साहित्य के इतिहास को ही अपूर्ण मानते हैं जिसमें **गीतांजलि** और **गार्डनर** का वर्णन न किया हो। अस्तु। डा॰ रवीन्द्रनाथ महाशय की **चित्रांगदा** को मैं बहुत पहले हिन्दी मे लिख चुका हूं। **गीतांजलि**का हिन्दी कवितावद्ध अनुवाद, होल्कर हिन्दीग्रन्थमाला के रूप में **नवरत्न-सरस्वती-भवन** झालरापाटन राजपूताना से प्रकाशित होकर हिन्दी जनताके साम्हने आचुका है और आज यह **बागवान** (गार्डनर का अनुवाद) आप लोगों के सन्मुख उपस्थित है। यहां पर मै मुक्तकण्ठ से प्रकट किये बिना नहीं रह सकता कि यदि मुझे काव्यसाहित्यरसिक श्रीयुत प्रो॰ अमरनाथ झा महाशय का लेख देखने को न मिला होतातो गार्डनर के लिखने की वृत्ति को प्रबल प्रेरणा न मिलती। अतएव इसके लिखे

जाने में उक्त अध्यापक महाशय ही प्रधान कारण हैं और वे मेरे धन्यवाद के अधिकारी है ।

इस (बागबान) का प्रथम संस्करण आगरा के बेलनगंज में स्थापित हुई **श्रीविजयधर्मलक्ष्मी ज्ञान-मन्दिर** नामक विख्यात संस्थासे होरहा है । जो संस्था **परम विद्यानुरागी, परमतसहिष्णु पूर्व और पश्चिम के विद्वानों के परमस्नेही, तपागच्छाधिपति, युगप्रधान आचार्य श्रीविजयधर्मसूरिमहाराज के स्मारक** में उनके पट्टाधिरूढ़ इतिहासतत्त्व महोदधि **आचार्य श्रीविजयेन्द्रसूरिजी,** उपाध्याय **श्रीमंगलविजयजी** न्यायविशारद न्यायतीर्थ, व्याख्यानचूड़ामणि व मार्मिक लेखक **मुनिराज श्रीविद्याविजयजी,** शान्त दान्त व पण्डित **मुनि श्रीजयन्तविजयजी** और **ज्ञानभक्ति में अपनी कमाई हुई लक्ष्मी का उपयोग करने वाले** सेठ **लक्ष्मीचंदजी बैद** और उनके **धर्मरतपुत्र अमरचंदजी मोहनलालजी फूलचंदजी** आदि ने हमारे साम्हने ज्ञान और लक्ष्मी के योग से खोली है । इस संस्था से और भी अच्छे अच्छे काम होने की आशा है ।

इस **बागबान** के लिखने में मेरे रात दिन एक होगये हैं । कवीन्द्र रवीन्द्र को समझने और अपने शब्दोंमें समझाने का मनुष्य साध्य यत्न करने में अपने जान मैने कोई बात उठा नहीं रक्खी । यदि इसमें कविके भाव छूटे न हों या कहीं और भी विशद होगये हों तो अन्तर्यामी परमात्मा की कृपा और गुरुजनों के आशीर्वादका

प्रभाव है बाकी मेरे ऐसे व्यक्ति का तो स्वतन्त्र अस्तित्व ही क्या है:—

" केनापि देवेन हृदि स्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि "

यदि हिन्दीप्रेमियों को इस **बागबान** में मजा आया और डा० रवीन्द्रनाथ टागोर की अन्यान्य कृतियोंके देखने का अनुराग हुआ तो मैं समझूंगा कि मेरा श्रम सफल हुआ।

नवरत्नसरस्वतीभवन
झालरापाटन
राजपूताना
वै० शु० २ सं० १९८१ वि०

गिरिधर.

श्रीः

॥ बागवान ॥

(१)

सेवकः— दया दिखा दया, तेरे—
सेवक पै महारानी,

महारानीः— दरबार हो चुका है
गये सब मेरे दास,
किस लिए आया है तू
इतना विलम्ब कर ?

सेवकः— होले तू निवृत्त जब
औरों से, है मेरा वक्त;
आया हूं मैं पूछने को—
स्वामिनी की आज्ञा, क्या है—
तेरे इस अन्त्यतम
सेवक के लिये काम ?

महारानीः— चाहता है क्या तू ? जब
होगया विलम्ब भारी !

सेवकः— बना मुझे तेरी पुष्प—
वाटिका का बागवान ।

महारानीः— कैसा है अनाड़ीपन ?

सेवकः— और काम छोड़ दूंगा,
मेरे तलवार भाले
नीचे रखता हूं सारे,
भेज न विदेश मुझे
बना बना राजदूत,
नये लोक दबाने को
सेनापति कर मत,
किन्तु—बना निजी पुष्प—
वाटिका का बागवान।

महारानीः— कर्तव्य होंगे तेरे क्या ?
और न कुछ, निठाले—
दिनों बीच तेरी सेवा,
सेवा सेवा सेवा मात्र;—
रक्खूंगा मैं स्वच्छतर
दूब वाली रविशों को
प्रात जहां करती तू
मन्द मन्द पदचार,
पद पद पर तेरे
पदों की अभ्यर्थना को
चरण तलों में तेरे
देने जीवनोपहार

बड़ ही समुत्सुक हैं
जहां पै सुमन वृन्द,
सप्तपर्ण शाखाओं के
झूलों में झुलाऊंगा मैं
सायंकालिक चन्द्रमा
पत्तियों के द्वारा जहां
तेरे अंचलों को चूम-
लेने का, करेगा यत्न।

महारानी:— पारितोषिक लेगा क्या-
तू तेरे इन कामों का ?

सेवक:— एक मात्र अनुमतिः—
कोमल कमल की-सी
तेरी नन्ही-सी मुट्ठी को
पकड़ के, पिन्हाने की
कलाइयों में गजरे
कुसुम कलीके गुंथे;
और, पद तलवों पै
अशोक के कुसुमों की
पत्तियों के रंग से ही
सुमंडन बनाने की;
और, वहां कोई रेणु
भग्य से आ लगजाय.

परम धन्य, तो उसे
तेरी चरण रज को
प्रेम से लेनेकी चूम।

महारानी:— स्वीकार सेवक ! मेरे
मुझे तेरी प्रार्थना है
बनेगा तू मेरी पुष्प—
वाटिका का बागवान।

---

[२]

सांझका समय चला—
आरहा है आह कवे !
होते चले जा रहे है
तेरे भी सफेद केश,
सुन रहा है क्या ? तेरे—
एकान्त चिन्तन बीच
आयुष्य के परिपूर्ण—
हुए वारके संदेश।
बोल उठा कविवर:—
" सांझ हो चुकी है यह
और सुन रहा हूं मैं,
किन्तु—कोई एक जन

खींच से बुलाने को है
हो जाय भले ही देर।
सोचता हूं:—यदि होवे
तारुण्य-उमंग-भरे
भूले पड़े हृदयों का
आपस में सम्मेलन,
अनेरी जुगल जोड़ी
उत्सुक अँखड़ियों की
और यदि चाह करे
मनोरम संगीत की,
चुप्पी को मिटाने और
होने उनके बखान:—
कौन है वहां पर तो
गूंथने को मोह भरे
उनके अनूठे गान;
यदि मैं जाकर बैठूं
जीवन किनारे पर,
मौत मौत के पार के
और लगा बैठूं ध्यान।
सन्ध्याका प्रथम तारा
डूब रहा, शान्त होती
श्मशान की चिता ज्वाला

शान्त सरिता के सग,
उजड़े हुए सुनसान
घरों के आंगन से
एक साथ रोते श्याल
अभ्रसे छुपते हुए
चांदकी चांदनी बीच;
जो कोई भूला भटका
घर छोड़ आवे यहां
देखने को काली रात,
और नीचा सीस किये
सुनने को अंधेर का
मर्मर मर्मर नाद;
कौन है? वहां पर तो
उसके श्रवण बीच
फूंक देने के निमित्त
जीवन-रहस्य-मन्त्रः—
यदि मैं करलूं बन्द
मेरे सब दरवाजे
और करूं पूर्ण यत्न
हो जाने का प्राकृतिक—
बन्धनों से स्वयं मुक्त!
बात है न कुछ यह

होते मेरे श्वेत बाल,
मैं तो हूं सदा ही युवा,
सदा वृद्ध, युवा-वृद्ध,
युवतम, वृद्धतम,
सब ही, इस गांव का।
कुछ स्मित करते हैं
मधुर मधुर सादा
और कुछ चमकाते
आँखें हैं कपट धार,
कुछ आँसू बरसाते
हर्ष के जो देखने में
आते खूब मानवों के
दिन के प्रकाश बीच,
और, और कुछ आँसू
खरते हैं चुपचाप
छुपे ही रहते हैं जो
गहरे अँधेरे मांहि
उदासी के ध्वान्तबीच;—
इन्हें मेरी पूरी पूरी
बेहद जरूरत है
समय नहीं है मुझे
सोचने को परकाल,

एक एक व्यक्ति का हूँ
मैं तो समवय साथी
परवा है भला क्या जो
होते मेरे श्वेत बाल ?

[३]

प्रातःकाल मैंने डाली
समुद्र के बीच जाल
खींचलीं तमिस्रपूर्ण
अत्यन्त गहराई से
विचित्र आकृति वाली
अद्भुत-सुंदर वस्तुः—
दमकती जिनमें थीं
कुछ मन्द-स्मित सम,
रम्य दीप्ति दिखाती थीं
अश्रुकण की-सी कुछ,
और कुछ लज्जा लिये
झलक रही थीं ऐसी
नवल वधू के देखें
जैसे झलक कपोल ।
घर को गया मैं जब
दिवस का बोझ लिये

बैठी थी मेरी प्रेयसी
कुसुम-पँखड़ियों को
चूँटती बिन उद्देश ,
योंही आराम के बीच ।
थोड़ी देर खड़ा रहा
फिर मैंने किया भेंट
प्रिया के पदों में सब
लाया था मैं जो निकाल
और खड़ा रहा शान्त ।
प्रिया ने निगाह डाली
उन पर और कहाः—
"क्या हैं ये विचित्र चीजें !
है क्या इनका उपयोग ?
मुझको नहीं है ज्ञात ।"
मारे शरमके मैंने
नीचा निज सीस किया
और सोचा चित्तबीचः-
'इनके लिये न मैंने
किया युद्ध घमसान,
खरीदा न मैंने इन्हें
हाटबीच द्रव्य काट,
नहीं है प्रिया के लिये

सुयोग्य ये उपहार ।'
फिर मैंने सारी रात
एक एक कर उन्हें
फैंक दिया मार्ग मध्य ।
प्रात आये मुसाफिर
और उन्होंने उनको
उठा लिया, ले भी गये
सुदूर देशों में और ।

---

[४]

आह ! मुझे अचंभा है
बनाया उन्होंने क्यों है
नगर के बजार के
मार्ग-पास मेरा गेह !
लंगर डालते हैं वे
लदे हुए जहाजों का
उनके, पास ही मेरे—
वृक्षों के--बहुत पास ।
आते है जाते हैं और
यात्रा भी करते है वे
अपनी इच्छानुसार ।
बैठी हूं मैं उन्हें और

देखती ही रहती हूं
जाता है वृथा ही मेरा
बिना काम यों-ही काल,
लौटा नहीं सकती हूं
उन्हें मैं किसी तरह
और इस तरा मेरे
होते हैं व्यतीत दिन।
मेरे दरवाजे-पर
उनके पदोंकी धुन
सुन पड़े रात दिन,
व्यर्थ चिल्ला उठती हूं
'जानती हूं मैं तुम्हें न।'
उनमें-से कुछ मेरी
उंगलियों को जानते है
और पहचानते हैं
कई एक मेरी नाक,
जान पड़ता है मेरी
नसों मे फिरने वाला
रक्त इन्हें रहा जान,
और कुछ जाने हुए
मेरे स्वप्नों के हैं पूर्ण।
लौटा नहीं सकती हूं

उन्हें मैं किसी तरह
पुकारती उन्हें मैं हूं
और यह कहती हूं:—
जिनको पसंद होवे
आजावें वे मेरे गेह,
हां, आजांय मेरे गेह।
प्रभात में हो रहा है
मंदिर में घण्टा नाद
आते हैं वे साथ लिये
निज हाथों बीच छात्र,
गुलाब सी लाली लिये
उनके हैं पद द्वंद
उनके चहरे-पर
विलसे उषा-प्रकाश,
लौटा नहीं सकती हूं
उन्हें मैं किसी तरह
पुकारती उन्हें हूं मैं
और यह कहती हूं:—
आओ मेरे बगीचे में
यहां, पास—पास—पास।
भरी दो पहरी बीच
महल के द्वार पर

हो रहा है कोलाहल,
मुझको नहीं है ज्ञात
छोड़ते है क्यो वे काम।
और क्यो लगाते डेरा
मेरी झाड़ियो के पास,
फीके और मुरझाये
उनके हैं केशपुष्प
धीमा और मंद फीका
उनका है बंसीराग,
लौटा नहीं सकती हूं
उन्हें मैं किसी तरह
पुकारती उन्हे हूं मैं
कहती हूं यह और:—
मेरे तरुतल की है
शीतल शीतल छाँह
आओ, आओ, आओ, मित्रो
बैठो मेरी ठंडी छाँह।
रात में झींगर झीं-झीं
करते है जंगल में
कौन है जो आ रहा है
हौले हौले मेरे द्वार
और खटका रहा है

सुसभ्यता से कपाट ?
अस्पष्ट देख रही हूं
आभास सम चहरा
एक भी न होता शब्द,
छा रही है पूर्ण शान्ति
गगन की सभी ओर,
लौटा नहीं सकती हूं
मेरे शान्त अतिथि को
नहीं, नहीं, लौटा नहीं—
सकती हूं किसी भांति,
देखती हूं चहरे की—
ओर, अंधकार द्वारा,
और बीती चली जातीं
होरायें यों स्वप्न साज ।

---

[५]

मुझको नहीं है चैन
मैं हूं अति तृष्णा वाला
उन उन वस्तुओं का
जो हैं बड़ी भारी दूर,
अप्रकाशित दूरी के
अंचल परसने को

जाता है बाहर आत्मा
लालसा से लबालब
भरा मेरा अत्यातुर,
ओ अति महती दूरी !
तेरी बाँसरी का स्पष्ट
ओ प्रबल आकर्षण !
भूल गया भूल गया
भूल गया सदा को मैं:—
'उड़ने के लिये पांखें
मैं रखता हूं न, और,
सदा सर्वदा के लिये
हूं इसी जगह बन्द,
जगता हुआ हूं और।
जानता हूं निश्चित ही
अजनवी देश में मैं
अजनवी हूं मनुष्य।
असम्भव आशाओं की
हवा को चलाते आते
मेरे पास तेरे श्वास,
मेरे हृदय को नीके
उसी की स्वयं हो जैसे-
परिचित पूरी पूरी

तरी है भाषा-जबान।
खोज से परे ओ दूरी,
तेरी मुरली का स्पष्ट
प्रबल ओ आकर्षण।
भूल गया भूल गया
भूल गया सदा को मैं:-
जानता नहीं हूं मार्ग
और पांखों वाला मेरे
अश्व भी नहीं है पास
सूखी पत्र-हीन हूं मैं
और मैं रहा हूं भ्रम
अपने हृदय बीच।
सायंकाल फूलने पै
सुनहली किरणों में
गहती है कैसा रूप
सुविस्तृत छाया तेरी
नभो नीलिमा के मध्य।
ओ अति दूरी से भी
दूरी! दूरी के भी अन्त
स्पष्ट तेरी बंसीका ओ,
बलशाली आकर्षण!
भूल गया भूल गया

भूल गया सदा को मैं
दरवाजे हो रहे है
सभी ओर बंद बंद
घर के; मै करता हूं
उसी में अकेले वास ।

---

(६)

पालतू विहंगम था
एक पींजरे में बंद
और, था स्वतन्त्र पंछी
जंगल मे सदा मुक्त ।
समय के आने पर
मिले दोनों आपस में
विधाता की प्रेरणा से
होगया ऐसा विधान,
मुक्तम पंछी बोला:—
"प्रेमस्वरूप ओ मेरे !
करें हम उड्डयन
सघन अरण्य ओर।"
पींजरे के विहगने
इच्छा धीम प्रकटाई:—

'यहां आ निवास करे
पींजरे में दोनों हम।'
बोला तब मुक्त पंछी:—
उड़ान की बात क्या है--
एक बार भी पांखो के
फड़फड़ाने की जगह
कहां है उस स्थान पै
प्यारे! सलियों के बीच।
हाय कर चिल्ला उठा
पींजरे का विहंगम:—
जानना किस कामका,
' बैठक मिलेगी मुझे
गगन में किस ठोर।'
बोला तब मुक्त पंछी:—
मेरे प्रिय! प्रियतम!
गा वनदेशो के गान।
पींजरे का पंछी बोला:—
बैठ मेरे पास आके
सिखाऊंगा तुझको मैं
पढ़े लिखोंके व्याख्यान।
वनका विहग बोला:—
नहीं, आह नहीं, नहीं।

सिखाये न जा सकते—
कभी, कभी नहीं, गान ।
पींजरे का बोला खग:—
अफसोस, अफसोस,
मेरे लिये अफ़सोस
जानता नहीं हूं मैं हा!
गहन देशो के गान।"
मिला हुआ लालसा से
उनका है प्रेम गाढ
उड न सकेंगे किन्तु
पांख से भिड़ा वे पांख ।
पींजरे की सलीम से
देखते परस्पर है
किन्तु एकका अन्यको
जानने का व्यर्थ व्यर्थ
उनका है अभिलाष ।
बड़ी ही आतुरता से
प्रत्येक फड़ फड़ाते
निज निज पांखों को, है—
और कर रहे गान:—
"आजा पास मेरे प्यारे
मेरे प्रेम आजा पास ।

कहता है मुक्त पंछी:—
"आ नहीं सकता हूं मैं
भयभीत मैं हूं देख
पींजरे के बन्द द्वार।"
पींजरे का पंछी कहे
धीमी-सी आवाज से यों:—
"हाय! मेरी पांख हैं ये
शक्तिहीन मुरदार।

(७)

ओ माँ! जाने को है आज!
तरुण राजकुमार
होकर हमारे द्वार,
कैसे हो सकती मैं हूं
हाजिर करने काम
अपने प्रभात काल?
बतलादे मुझे कैसे
सवांरू मैं मेरे बाल?
सजाऊं क्या अलंकार?
देखती है माता! क्यों तू
चकित निगाह डाल?
जानती हूं भलीभांति

निगह उठाके वह
मेरी खिड़की-ओर न
देखेगा एक भी बार,
जानती हूं:-जायगा वो
सर्वथा बाहर चला
मेरी दृष्टि मर्यादा के,
देखेगा न उठा आँख,
केवल रह रह के
सुनाई-सा देगा कुछ
दूर से ही आता हुआ
मुझे, सिसकाता हुआ
लय पाता वंसीनाद।
किन्तु वह जावेगाही
तरुण राजकुमार
होकर हमारे द्वार
और, मैं इसके लिये
उत्तम सजूंगी साज।
ओ माँ ! चला गया वह
तरुण राजकुमार
होकर हमारे द्वार
और उसके रथ से
चमका प्रभात भान।

घूंघट हटा था मैने
अपने गले मेंसे ली
माला लालों की निकाल
उसके पथ दी डाल,
देखती है क्यों तू माता !
चकित निगाह डाल ?
जानती हूं भली भांति
उसने उठाई नहीं
अनुपम वह माल,
जानती हूं दबी है वो
उसके रथ चक्र से
बनाती हुई धूलिपै
आभास-सा चिन्ह लाल,
किसी ने न जाना कुछ
मेरा है क्या उपहार !
किस के लिये है और !
किन्तु चला गया वह
तरुण राजकुमार—
होकर हमारे द्वार,
और, मैंने बिछा दिये
निज सीने से निकाल
पथ पर रत्नहार

(८)

सेज के पास का मेरे
जब बुझा गया दिया
जाग मैं उठी थी तब
बड़े ही सवेरे, होते——
विहगों के कलगान।
बैठी मैं जाकर पास
मेरी खुली खिड़की के
थे मेरे बिखरे बाल,
उन पै महकवाली
थी ताजा कुसुम माल।
आया नवयुवा एक
मुसाफिर सड़क पै
प्रभात के समय की
गुलाबी प्रभा के बीच,
उसके गले में एक
मोतियों की मालिका थी
और उस के ताज-पै
गिरते थे भानु-अंशु,
मेरे दरवाजे-पर
उसने ठहर कर

बड़ी ही उत्सुकता से
देकर अवाज, मुझे
पूछा:—"है वह किधर ?"
बड़ी ही लज्जा के मारे
दे न सकी मैं जवाब:—
"मैं हूं वह,-मुसाफिर !
नवयुवा-! मैं हूं वह।"
सायंकाल हो गया था
जलाया नहीं था दीप
सावधानी बिन वेणी
अपनी रही थी गूंथ,
युवा वह मुसाफिर
निज रथ-पर आया
अस्त होते सूरज की
होने झलपलाहट।
उसके तुरंगमों के
मूं से आ रहे थे झाग,
और उसके वस्त्रो पे
छाया था धुंधलापन,
वह मेरे द्वार पर-
उतरा, पूछने लगा
थकी हुई अवाज से-



और:—'किधर है वह ?"
बड़ी ही लज्जा के मारे
दे न सकी मैं जवाब:—
"मैं हूं वह, थके हुए—
मुसाफिर ! मैं हूं वह।"
मौसम बसन्त की है,
चैत्र की है एक रात,
प्रभा छिटका रहा है—
मेरे कमरे में दीप.
मन्द-मन्द दाक्षिण का
आ रहा है पवमान
पींजरे में सो रहा है
शुक गाता मृदु गान,
सजाये हुए हूं मैं भी
रंगीन कुरती चोली
मयूर की गर्दन-सी.
और, मेरी साड़ी भी है
हरी दूब के समान,
बैठी हुई खिड़की के—
पास के बरामदे में.
डालती हुई निगाह,
किसी की करती खोज—

अंधेरी निशा में होके,
गुनगुना रही थी मैं:—
"मैं हूं वह,—आशाहीन
मुसाफिर !—मैं हूं वह ।"

---

(६)

रात के समय जब
करती हूं अभिसार
पीतम की ओर मेरे;
पंछी न करते गान,
चलती नहीं है हवा,
गली के उभय ओर—
शान्त खड़े हैं मकान,
होता है केवल मेरे
चरणों के नूपुरों का
पद पद पै झंकार—
बड़े ही वेग से, और—
आ जाती है मुझे लाज ।
बैठती हूं जब मेरे--
झरोखे में, सुनने को—
समुत्सुक:—पदाहट,
किसी एक वृक्ष पै भी



खड़खड़ाते न पान,
जल है नदी में शान्त,
सोते हुए सन्तरी के
घुटनों के ऊपर की
तलवार के समान।
केवल वह मेरा ही
हृदय है जो ज़ोरों से
धड़क रहा है उसे
करूं कैसे शान्त ? मुझे
इसका नहीं है ज्ञान।
जब मेरा प्रियतम
आकर बैठ जाता है
बिल्कुल मेरे पास:—
धूजता है मेरा गात,
होती हैं पलकें बन्द;
अंधेरा बढ़ाती रात,
हवा कर देती दीप,
बादल भली भांति से
सितारों को देते ढांक:
केवल मेरे हिये का
चमक रहा है रत्न
फैला रहा है प्रकाश,

उसे छुपा रखने का
मुझको नहीं है ज्ञान।

---

(१०)

दुलहिन दुलारी ओ!
रहने दे तेरे काम,
सुन, आये महमान,
सुनभी रही है ? वह—
किवाड़ों पै लगी हुई
साकल बजा रहे हैं—
होले, सभ्यता के साथ।
देखना नूपुर तेरे—
जोरो से न बज पावें!
जलदी करें न पैर—
तेरे, मिलने के काल;
साझ के समय आये
नई बहू! महमान।
दुलही! घबरा मत
नहीं है नहीं है वह
हवा का भारी तूफान।
चैती पूर्णिमाका पूर्ण
चन्द्रमा खिला हुआ है,



रजनी का-है विकास,
फीकी पड़गई छाया
चौगान के बीच, पाके—
चन्द्रिका का महोल्लास,
प्रकाशित हो रहा है
शिरपर महाकाश;
अगर आवश्यक हो
चहरे पे घूंघट ले,
भय पाती हो, तो दिया—
द्वार पर लेजा साथ,
दुलही ! घबरा मत
नहीं है, नहीं है, वह
हवा का भारी तूफान।
आती हो शरम तुझे—
अगर न एक बात
करना उसके साथ,
एक ओर दरवाजे के
खड़ी होना, जब होवे
तेरा उससे मिलाप।
यदि वह प्रश्न पूछे—
तुझे, और तू भी चाहे,
कर लेना शान्ति में तू

मींची निज दोनों आंख,
झनझनाट करने
न देना तू कंकणों को
जब तेरे करमें हो
दीप, और ला रही हो
उसे निज गेह मांहि;
अगर शरम तुझे
आती हो, न एक बात
करना उसके साथ।
अब तक नहीं किया
पूर्ण निज काम तूने ?
सुन, आये महमान।
अबतक गोद्वारे पै
तू ने लगाया दीप ?
की नहीं तयार तूने
सायंकालिक सेवा मे—
समर्पित करने को
फूलों से सजाई छाब ?
सौभाग्य की हींगलू से
सजाई न लाल मांग ?
लगाई न रोली ? और—
सजे न रात्रि-शृंगार ?





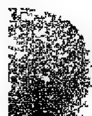
सजती है दुलहिन ?
आगये वो महमान !
रहने दे तेरे काम !

---

(११)

जैसी है वैसी ही आजा
वेशभूषा मत ठान,
यदि तेरी वेणी ढीली,
होगई हो, बनी हो ना
यदि तेरी सीधी मांग,
और यदि बँधी न हो
तनिया तेरी चोली की
कर कुछ परवा न,
जैसी है वैसी ही आजा
वेशभूषा मत ठान।
आजा हरियाली पर
शीघ्र शीघ्र देती पात्र,
तेरे चरणों से छूट
जावक की सारी लाली
लग जाने से तुषार,

यदि ढीले पड़ कर
नूपुर घुंवरू दार
छिटक पदोंसे जाँय,
और तेरी माला के जो
मोती टूट गिर जाँय,
कर कुछ परवा न,
आजा हरियाली पर
शीघ्र शीघ्र देती पांव।
देख भी रही है, छाते—
अभ्रदल है अकास!
सारसों के जोड़े और
बगुलों के झुंड झुंड
उड़े चले आ रहे हैं
दूरी के नदी तट में,
चंचल हवा के और
हरियाली पर झोंके
आ रहे हैं लगातार,
अत्यातुर पशुओं के
वृन्द दोड़े आ रहे हैं
गांव में गोशाला-ओर,
देख भी रही है! छाते—



अभ्रदल हैं अकास ?
व्यर्थ ही जलाती है तू
साज सजने को दीप,
हिलता है—हो जाता है
हवा के झोकों में वह,
काजल न आंजा तूने
कौन सकता है जान ?
क्योंकि—तेरी आँखें ही हैं
निशाके घन—श्याम से भी
सलोनी ! विशेष श्याम,
व्यर्थ ही जलाती है तू
साज सजने को दीप,
क्योंकि वह रहता न ।
जैसी है वैसी ही आजा
वेशभूषा मत ठान;—
कुछ भी नहीं है चिन्ता
गुथा जो न होवे हार,
पहोंचियों की घुंडियां
लगी जो न हों, लगान,
बादलों से छागया है
घन घोर आसमान,
देर होगई बहुत,

जैसी हो वैसी ही आजा
वेश भूषा मत ठान ।

(१२)

काम में लगना जो हो
और घट भरने में
आजा तो ओ आजा आजा
मेरे सरोवर-पर !
तेरे चरणों के चारों—
ओर, फेरी लगा पानी
कहेगा रहस्य गुप्त ।
बरसात होने को है
रेती पै छाई है छाया,
घटाये झुकी हुई हैं—
श्याम, तेरे नयनों की—
काली भँवों के समान ।
जानता हूं भली भांति
लय—ताल—प्रास मय—
तेरी पद—आहट की—
रमणीय झणकार
स्पन्दन करती हुई
घर कर बैठी हैं के



श्रद्धा को हृदय मांहि,
घट तुझे भरना हो
आजा तो ओ आजा आजा
मेरे सरोवर--पर।
सोचते हुए जो तुझे
यों ही शान्त बैठना हो
और घट पानी पर
तैरते ही देना छोड़,
आजा तो ओ! आजा, आजा,
मेरे सरोवर पर।
हरियाली वाली ढाल
सघन हरी है और
वन पुष्प हैं अनन्त,
तेरी श्याम अँखड़ी से
निकलेंगे अगणित
गगन—विहारी रम्य
नीडों से विहग सम
सुन्दरतर विचार,
चादर खिसक तेरे
पड़ेगी चरणों पर;
बैठना ही चाहती जो
शान्त करते विचार

आजा तो ओ आजा आजा
मेरे सरोवर पर।
सारे खेल छोड़ना हो
तुझे, और लेना होवे—
पानी में डुबकी यदि,
आजा तो ओ ! आजा आजा
मेरे सरोवर-पर।
रखदे किनारे पर
तेरी दूधिया साड़ी को.
ढँक देगा छुपा लेगा
तुझे दूधिया सलिल,
तैयार तरंग होगी
चूमने को तेरा कंठ
कहने को भी कान में
और कोई कोई बात,
लेना हो डुबकी तुझे
सलिलके बीच यदि
आजा तो ओ ! आजा आजा
मेरे सरोवर पर।
होना हो जो मत्त तुझे
जाना हो छलांग
— मृत्यु के परली पार,



आजा तो आ ! आजा आजा
मेरे सरोवर पर,
है वह शीतल शान्त
गम्भीरतर अपार
स्वप्नहीन सुषुप्ति–सा
अनिर्वचनीय श्याम,
जहां दिन और रातें
उसकी गंभीरता में
सभी भांति हैं समान,
और हैं सुशान्त गान,
यदि तुझे जीतने को
भिड़ना हो मृत्यु-साथ
आजा तो आ ! आजा आजा
मेरे सरोवर-पर ।

---

(१३)

मैंने पूछा कुछ नहीं
केवल खड़ा रहा मैं
तरुवर की ओट में
जंगल की एक ओर।
प्रभात के नयनों में
अबतक घुमेरी थी

पवन मे था तुषार,
नमीवाली घास की थी
भीनी भीनी धीमी गन्ध
मिली-सी जान पड़ती
हिममयी भूमि मांहि।
बटके विटप नीचे
दोह तू रही थी गाय
मक्खन के-ऐसे तेरे
स्वच्छ मृदु लगा हाथ,
और मै खड़ा हुआ था
अबतक वहीं स्तब्ध,
एकभी ने कहा शब्द—
मैने, रहा चुपचाप,
बन मे अदृश्य एक
पक्षी गा रहा था गान,
मौरो को बिखरता था—
आम पथपर आम,
एक एक बारी बारी
आ रही थी मधु मक्खी
छा रही थी गुंजारव
गुनगुन कर नाद,
द्वार शिवमन्दिर का



खुला था तलाव-ओर
आरंभ पुजारीने थे
किये और पूजा पाट,
घुटनो पै दोहनी ले
दोह तू रही थी गाय,
लेकर कटोरा खाली.
खड़ा मैं वहीं था स्तब्ध
आया न था तेरे पास,
मन्दिरों में होते हुए
महानाद घंटाओं के
गुँजाते थे आसमान,
जंगल को छोड़े हुए
पशुओं की खुरियों से
मार्ग पै उड़ रही थी
धुंधलाती हुई धूलि,
छलक छलक जल
जाँघों-पर बरसाते
ऐसे- घड़े ले–ले
आती थीं नदी से वाम,
तेरे कर कंकणों की
खन खनाट होती थी,
तेरे दुग्ध कुम्भों-पर
उभर रहे थे झाग,

होगया प्रभात और
न आया मैं तेरे पास।

---

(१४)

जानता नहीं हूं मैं क्यों
मार्ग में रहा था घूम,
जब कि बीत गया था
मध्यान्ह और बांसों की
—पवन की लहरों से-
डाले करती थीं गान।
सीधी परछाइयां थीं
जाते हुए प्रकाश के
पर्दों को पकड़े हुए
बढ़ा निज लम्बे हाथ।
कोयलें भी झुंझलाईं
रचतीं उन्हीं के गान,
जानता नहीं हूं मैं क्यों
मार्ग पै रहा था घूम!
सलिल की तरफ़ है
लटके हुए वृक्ष से—
छाई हुई कुटी एक,
कोई निज काम में थी

अविश्रान्त लगी हुई
बाला—जिसकी चूड़ियां
कोने में कर रही थीं
प्रकट सुन्दर राग,
न जाने क्यों खड़ा रहा
मैं इस कुटी के पास ।
बांकी चूकी पग दंडी
राई के खेत में होके
आम्रवन मे हो और
चली जाती हैं अनेक ।
गांव के मन्दिर पै हो
और हो बजार में वे
जाती हैं तरंगिणी के
भूविभाग की तरफ,
जानता नहीं हूं मैं क्यों
रुक गया कुटी—पास ।
बरसों व्यतीत हुए:—
बसंत की थी वहार
दक्षिण का चलता था
मलयज पवमान
रचता मर्मरनाद,
धूलि पै गिरा रहे थे

और निज मौर आम,
तट पर रक्खे हुए
पीतल के कलशों को
बार बार भिगोता था
कलकलाट करता
लेलेके हिलोरें जल,
न जाने क्यों करता हू
वसन्त की वहार के
में उन दिनों को याद।
छाया बढ़ी आ रही है
लौटते है पशु और
निज निज बाड़े-ओर,
मन्द-सा प्रकाश रहा
शून्य चरागाह पर,
प्रतीक्षा मे डोगी की है
तीर पर ग्राम लोक,
जानता नहीं हूं क्यों मे
धीमे धीमे पीछे पैर
रखता, रहा हूं लौट।

(१५)

दौड़ता हूं जंगल की
छाया मे उसी तरह
जिस तरा दौड़ता है
अपने ही सौरभ मे
मस्त हुआ, जंगल की
छाया में कस्तूरी मृग।
रजनी में-रजनी है–
वसन्त के जीवन की,
शीतल सुगंध मंद
दक्षिण की है बयार,
भूल मैं गया हूं मेरा
पंथ और भ्रमता हूं
खोज मैं रहा हूं उसे
सकता हूं जिसे पा न,
और, उसे पा रहा हूं
जिसे मैं हूं खोजता न।
मेरे ही हृदय-में-से
स्वयं मेरी लालसायें
मूर्त्तिमती हो होकर
बाहर निकलती है

और करती हैं नाच,
झलकती मायामयी–
मूर्त्ति, कल्पना आभास
रूपमय बने हुए
इधर उधर शीघ्र
भर रहे हैं उडान,
हिम्मत से साहस से
धैर्य से पकड़ने का
बड़ी दृढ़ता के साथ
उसे, करता हूं यत्न,
पर–वह भमाती है
देती है चकमे मुझे
बताती है औंधी राह,
खोज मैं रहा हूं उसे
सकता हूं जिसे पा न,
और उसे पा रहा हूं
जिसे मैं हूं खोजता न ।

---

(१६)

हुआ है सुदृढ़ तर
हाथों-का-हाथों से मेल



और आखे पर आख
जमा बैठीं अधिकार
हमारे हृदयो का है
आरम्भिक यही लेख.
चांदनी छिटकी हुई—
वसन्तकी रजनी है
हवा में है छाई हुई
हिना की मधुर गन्ध,
मेरी वंसी पृथ्वी पर
एक ओर पड़ी योंही
गुथके न पूरा हुआ
तेरा और पुष्पहार,
तेरे और मेरे—मे है
अमिश्रित गान-सा ये
स्वच्छ शुद्ध सादा प्रेम ।
चादर भभकेदार
केसर से रँगी हुई
तेरी, बनाती है मेरे
नयनों को मदोन्मत्त,
तूने जो गूंथी है माला
चमेली की मेरे लिये
देती है आनन्द, मेरे—

हियको श्लाघा के सम।
है यह विनोद लीलाः—
देने की और लेनेकी,
प्रकटाने छुपाने की
बार बार और कुछ
मंद मुसकराने की,
कुछ, कुछ लजानेकी,
और कुछ मचाने की
मधुर कलहवाद,
तेरे और मेरे में ये
अमिश्रित गानसा है
शुद्ध स्वच्छ सादा प्रेम।
परे वर्त्तमान के है
हमारा न कुछ भेद
कुछ भी नहीं है यत्न
असम्भव के निमित्त,
आनन्द की ओट में है—
नहीं कोई परछाईं
तम की उँडाई में है—
उतरने की इच्छा न,
तेरे और मेरे में ये
अमिश्रित गान-सा है

स्वच्छ शुद्ध सादा प्रेम ।
निरन्तर की शान्ति में–
उपेक्षा न करते हैं–
पालन ही करते हैं–
हम, एक एक शब्द,
आशा के परे की हम–
वस्तुओं के लिये कभी
तड़पते हुए नहीं
शून्य में उठाते हाथ,
देते लेते जो कुछ हैं
वही है हमारे लिये–
तोपकारी परिपूर्ण,
हमने किया नहीं है
चूर मूर आनन्द का
अन्त्यतम हद तक–
निचोकर गहने को
दरद का सुरासार,
तेरे और मेरे में ये
अमिश्रित गान सा है
स्वच्छ शुद्ध सादा प्रेम ।

(१७)

पीली पक्षी वृक्ष पर
कर रहा है मृदुल
गान, मेरे हृदय को
नचा रहा है बड़े ही
आनन्द के साथ नाच।
हम दोनों रहते हैं
एक गांव में हां, और
महा दुखका विषय
यह है हमारा एक।
उसके बड़े चावके
मै मने है चले आते
हमारे उपवन के
तरुओं की छाया मांहि
वे हैं यदि चले जाते
खेत में हमारे जौं-के
उठाकर ले आता हूं
मै उनको गोदी बीच;
गांव का हमारे नाम
खंजना है और नदी
अंजना के नाम से ही



हो रही है सुविख्यात
मेरा नाम खूब सारे
गांव का है जीना बीना
रंजना है उसका नाम।
हम दोनों के बीच मे
पड़ता है एक खेत,
मधु मक्खी चूसती है
हमारे उद्यान में जो
खोज करने के लिये
उस मधुको जाती है
उनके उद्यान बीच।
स्थान पर नहाने के
उनके, कुसुम डाले,
बह के प्रवाह में वे
आते उस जगह हैं
जहां हम करे स्नान।
सुखे हुए 'कुसूम' के
कुसुमों की छावें आती
होके उनके खेतों में
हमारे बजार मांहि।
गांवका हमारे नाम
खंजना है और नदी

अंजना के नाम से ही
हो रही है सुविख्यात
मेरा नाम खूब सारे
गांवका है जाना बीना
रंजना है उसका नाम ।
उनके घरकी ओर
जाती जो गली है वह
महकती बसन्त में
है आने ही आम् मोर ।
हो चुकती है तैयार
पक कर कटने को
उनके खेतों में जब
अलसी, हमारे तब
खेतों में लहराता है
बराबर फूला सन ।
उनकी झोंपड़ी पर
चमकते हुए तारे
करते प्रवाहित भा
हमारी ओर समान ।
उनके तलाव बीच
आई हुई बाढ़ सेही
बनता सघन घन

हमारा कदम्ब बन ।
गाव का हमारे नाम
खजना है और नदी
अंजना के नाम से ही
हो रही है सुविख्यात ।
मेरा नाम खूब सारे
गाव का है जाना बीना
रंजना है उसका नाम ।

---

(१८)

जल भरने के लिये
आती जब बहनें दो
आती है उस जगह,
मुसकराती हैं, और—
है विटप की ओट में
खड़े किसी मानव की
करती अवश्य खोज,
जब जब जाती हैं वे
भरने के लिये जल ।
जब इस जगा को वे
पार कर चली जाती
आपस में कुछ कुछ

करती हैं घुस पुस,
तरुवर की ओट में
खड़े हुए मानव का
जानती है अवश्य वे
अत्यन्त गुप्त रहस्य,
जब जब जाती हैं वे
भरने के लिये जल।
जब वे पहुंचती हैं
जल भर इस जगा
हिलती है अनचीती
उनकी गागरें और
ढुल जाता है सलिल,
पाती हैं वे खोजकर
तरुवर की ओट में—
खड़े किसी मानव का
हृदय लगाता दंश,
जब जब जाती हैं वे
भरने के लिये जल।
आती है यहां पै जब
तब दोनों आपस में
देखती ही रहती हैं
डाल के अपांग पात



करती है मृदुहास ।
जलदी उठते हुए
चरणों से उनके, है—
उठता प्रबल हास,
विह्वलता भरता जो
उस किसी मानव के
मन में है वृक्ष की जो
ओट में रहा है छुप,
जब जब जाती हैं वे
भरने के लिये जल ।

---

(१६)

सरिता की तरफ के
पथ पर हौले हौले
चल तू रही थी लिये
कमर पै भरा कुम्भ,
तूने क्यों अपना मुख
बड़ी शीघ्रता से मोड़ा,
उड़ते घूंघट में हो
मुझे चोर निगाह से
चुपसे लिया क्यों ताक ?
होकर अंधेरी में वो

मुझ पर तेजवाली
आकर नजर गिरी,
मन्द मन्द मारुत की
उस बीचि के समानः—
प्रेरणा जो दे–देकर
तरंगों को पहुंचाती
जल के प्रवाह द्वारा
छाया मय तीर पर ।
वह मुझे देख पड़ी
और होगई अदृश्य;
सांयं कालिक पंछिनी
शीघ्र शीघ्र उड़ती जो
दीप हीन कमरे की
खुली खिड़की में होके
दूसरी खिड़की में जा
होगई हो तामिस्रा के
मानो तममें अदृश्य ।
तू है पहाड़ी के पीछे
छुपी तारिका के सम
और मैं हूं राहगीर
भटकता मुसाफिर ।
किन्तु तू ठहर गई



क्यों थोड़ी सी देर को भी
मेरे चेहरे की ओर
डाली और क्यों निगाह,
घूंघट की ओट में से
चमकती भरी तेज ?
और किसलिये वहां
सरिता की तरफ़ के
पथ पर होले होले
चल तू रही थी, लिये—
कमर पै भरा कुम्भ ?

(२०)

आता है और जाता है
दिन प्रति दिन वह,
जा, और देआ उसे
निकाल मेरी वेणी से
मेरी सखी पुष्प एक।
यदि वह पूछे इसे
भिजवाया किसने है
तुझसे करती हूं मैं
विनय, बताना मत
किसी तरा मेरा नाम,

क्योंकि वह, एक मात्र
आता है जाता है और।
विटप के नीचे वह
धूल पर बैठता है
बिछौना लगा तू सखी
बिछा वहां फूल पान,
उसकी आखियां सखी
दुख से भरी हुई हैं
और उपजाती हैं वे
मेरे हृदय में खेद,
कहता नहीं है वह
चित्त में उसके क्या है
आता है जाता है और
एक मात्र चुप चाप।



(२१)

आता वह मेरे द्वार
दिन के निकलते ही
भटकता हुआ युवा
करता है क्यों पसंद?
आती हूं बाहर मैं या
जाती हूं मकान के मांहि



निकलना पड़ता है
होकर उसके पास
और उसके मुखसे
मेरी आंखें बनी मुग्ध !
करूं मै उससे बातें
रहूं या मैं चुप्पी साध
इसका रहा न ज्ञान,
आना मेरे द्वार पै क्यों
उसने किया पसन्द ?
घन घोर घटा वाली
काली हैं असाढ़ी रातें,
शरद में है सुन्दर
स्वच्छतर नीलाकाश,
दक्षिण के पवन की
लहरों के मारे दिन
बसन्त के हैं अशान्त,
प्रत्येक समय वह
बहाता ही रहता है
तरंगों निज गानों की
स्वच्छ शुद्ध लयवान,
काम से मैं लौटती हूं

अधरे तिरवरों से
छा जाती हैं मेरी आंख
आने मेरे द्वार पै क्यों
उसने किया पसन्द ?

---

(८२)

जब वह उतावली से
मेरे पास होके गई
उसका वसन-छोर
करगया मेरा स्पर्श,
हृदय के अनजाने
टापू में—से एकाएक
प्रकटा ऋतुराज का
ऊष्ण ऊष्ण सा उच्छ्वास,
चलतर स्पर्श यह
सुदुर्लभ सुख देता
छिन में ही उड़ गया
उसी तरा देके दुख
जैसे तोड़ी पखड़ियां
मृदु मृदु कुसुमों की
उड़ जाती हैं, हवा के—
डाली हुई झोंको बीच।

यह हो पड़ा है मेरे
हृदय पर उसके
तन तन से प्रकटे
दीर्घ निश्वास के सम
और उसके हियके
अन्तरतर देशकी
अत्यन्त व्याकुलता की
गुप्त बात के समान ।

---

(२३)

बैठी है वहां पै क्यों तू
और तेरे कंकणों को
खन खन करती है
क्यों वृथा के खेल मांहि ?
भर निज कुंभ को ले
समय होगया है कि
अपने तू घर जाय ।
पानी को हिला रही है
अपने करों से क्यों तू
मार्ग पै किसी के लिए
डालती चपल दृष्टि
लगी सुस्त खेल मांहि ?

भर निज कुम्भ को तू
घर पर आजा और ।
जाता है प्रभात चला
बहा जाता जल श्याम ।
तेरे व्यर्थ खेल देख
हँस रही लहरें हैं
और कर कल कल
करती है होले बात,
बादल फिरते हुए
एकत्रित हो गये हैं
भूमि की टेकरी पर
गगन की एक ओर
डाल कर पड़ाव वे
तेरा मुख देखते हैं
और मुसकराते हैं
तेरे व्यर्थ खेल देख ।
भर तेरे कुम्भ को ले
आजा निज घर ओर ।



(२४)

अपने ही हृदय में
रहस्य न छुपा मित्र,



मुझ पै प्रकट कर
एक मात्र मुझ पर
पाके अति गुप्त स्थान,
जो तू मुसकराता है
ऐसी सभ्यता से वहां
अति मृदुता से सुना
हौले हौले चुपचाप
हृदय सुन पावेगा
सुनेंगे न मेरे कान,
रात है गंभीरतर
घर पूर्ण है प्रशांत
पंछियों के घोंसले है
नींद से घिरे समस्त,
' हां, ना ' करते आंसू से
अकचाते स्मित द्वारा
मधुर शरम द्वारा
दुख दर्द द्वारा और
कह निज हृदय का
मुझे तू रहस्य गुप्त ।

(२५)

" हमारे समीप आजा
नोजवान ! बता सत्य
नयनों में तेरे क्यों है
छारहा पागलपन ?"
"मालूम नहीं है मुझे
कहाकी शराब तेज
पीली मैंने है जिससे
आखों में पागलपन।
" आह ! शरम शरम !"
भला, कुछ सयाने है
और कुछ हैं अबोध
हैं सचेत कुछ और
बे फिकर कुछ लोग;
आंखें कुछ स्मित वाली
और कुछ आँश्रु विन्दु
दीखती हैं दुनिया में:-
और मेरे नयनों में
छागया पागलपन ?"
" क्यों खड़ा है बतलादे,
विटप की छाया नीचे



नोजवान ! ऐसा शान्त ?'
" मेरे हिय के बोझ से
थक गये मेरे पांव,
और मैं छाया के नीचे
खड़ा हूं होकर शान्त ।"
"आह ! शरम शरम ।।"
" भला, कुछ जारहे हैं
शीघ्र निज मार्ग पर
कुछ करते विलम्ब
कुछ पूर्ण हैं स्वतंत्र,
और कुछ परतंत्र,
मेरे पद और मेरे—
हृदय के बोझ से ही
थक रहे हो अशक्त ।"



(२६)

" आते हैं जो वाञ्छायुक
तेरे करों से उनको
ग्रहण कर लेता हूं
मांगता हूं न विशेष "

"'हां, हा हा, मैं जानती हूं
अत्यन्त नम्र यम्बक !
कह तू रहा है दे दे
मुझे निज का सर्वस्व"
"यदि होगा चुना हुआ
एक पुष्प मेरे लिए
मेरे हृदय में दूंगा
मैं उसके लिए स्थान ।"
"किन्तु कांटे हुए यदि ?"
"करूंगा उन्हें सहन ।"
'हां, हां हां, मैं जानती हूं
अत्यन्त नम्र याचक !
कह तू रहा है दे दे
मुझे निज का सर्वस्व ।"
"किन्तु जो तु एकबार
केवल हां एकबार
डाले मेरे मुख पर
ऊंची कर प्रेमपूर्ण
अमृत भरी निगाह,
वह मेरे जीवन को
बना देगी सुमधुर



मौत के भी उस पार।"
"परन्तु हुई वे यदि
क्रूरतर एकमात्र ?"
"उनको, तो रक्खूंगा मैं
हृदय के हृदय में
बनाती गहरे घाव।"
"हां, हां हां, मैं जानती हूं
अत्यन्त नम्र याचक !
कह तू रहा है दे दे
मुझे निजका सर्वस्व।"

(२७)

प्रेम का विश्वास कर:—
हृदय न कर बंद
यद्यपि लाता है वह
भारी घाव, कारी दर्द।
"आह ! नहीं मेरे मित्र
तेरे हैं रहस्य मय
भेद भरे सारे शब्द
समझ न सकती हूं
उनको मैं भली भांति।"
"हृदय है देने ही को—

देने ही को मेरी प्यारी!
एक अश्रुहीके साथ
एक गानही के संग।"
"आह, नहीं मेरे मित्र
तेरे है रहस्य मय
भेद भरे सारे शब्द
समझ न सकती हूं
उनको मैं भली भांति।"
"खुशियां हैं नाशमयी
तुषार की बिन्दुओं-सी
जब खिल खिलाती हैं
पाती हैं वे नाश-लय,
है परन्तु शोक दृढ़
दृढ़तर, और स्थायी
शोक भरे प्रेमको दे
नयनों में तेरे स्थान
और रख जागरित।"—
"आह नहीं मेरे मित्र
तेरे हैं रहस्य मय
भेद भरे सारे शब्द
समझ न सकती हूं
उनको मैं भली भांति।"

" खिलती सरोजिनी है
सूरज के दर्शन से
समर्पण करती है
और निजका सर्वस्व
शियाले की तुषारों में
मुकुलित कलिका में
रहती नहीं है वह ।"
आह नहीं मेरे मित्र
तेरे हैं रहस्य मय
भेद भरे सारे शब्द
समझ न सकती हूं
उनको मैं भली भांति ।

---

(२८)

तेरी प्रश्न करतीसी
आंखें हैं मलिनतर
करती हैं प्रयत्न वे
जानने के लिये, मेरे–
आन्तरिक अभिप्राय
जैसे लेता चन्द्रमा है
निधि गहराई माप ।
सन्मुख आखों के तेरे

बिताया है मैंने निज
जीवन को साफ साफ
बिना रक्खे भेद भाव
या कुछ रक्खे दुराव
शुरू से अखीर तक।
कारण है यही जो तू
मुझको रही न जान।
यदि वह होता रत्न
करता मैं टुकड़े सो
और उन्हें जड़कर
बनाता रतन हार
गले में तेरे देता डाल।
जो वह कुसुम एक
केवल होता छोटा-सा
गोल और सुमधुर
उसे उसके मूल से
चुनलाता, सजाने को
तेरा सुकेश-कलाप,
परन्तु है मेरी प्यारी!
वह तो हृदय एक
उसके कहां है तीर,
इसका कहां है तल,

जानती नहीं है हद
अनहद है साम्राज्य
इस महाराज्य की है
तू तथापि महारानी
तेरा है यह साम्राज्य।
वह यदि होती एक
प्रसन्नतामयी छिन
बरसा देती तो वह
मृदुहास में कुसुम
उसको तू देखपाती
और पढ़ लेती उसे
छिन भर में भी खूब।
यदि वह होता दुःख
केवल, निकला होता
स्वच्छ अश्रुओं के बीच
प्रतिबिम्ब डाल कर
प्रकटाता गुप्त भेद
बिना कहे एक शब्द,
किन्तु मेरी प्यारी है वो
प्रेम ! प्रेम ! प्रेम ! प्रेम।
अनहद इसके हैं
सुख दुख हर्ष शोक

हैं अनन्त इसके त्यों
वैभवश्रौ अभिलाष,
है यह समीप तेरे
निज जीवन समान
किन्तु तू अच्छी तरह
इसे सकती न जान



(२६)

कहदे रसीले मेरे
शब्दों में बतादे मुझे
गाया है क्या तूने गान।
घन घोर घटावाली
अँधेरी हो रही रात
छुप गये सारे तारे
बादल में, और शोक
प्रदर्शित करती हैं
पत्तियों के द्वारा मन्द
पवमान की लहर।
उड़ने में दूंगी मेरी
खुली हुई अलकों को
लपेटे रहेगी मुझे
काली साड़ी रात सम,



चाप लूंगी तेरा सिर
स्वयं मेरे सीने पर
वहां पर एकान्त में
होगा मधुर संवाद—
प्रकट, तेरे हिये से
मुर्मुर मुर्मुर कर;
आंखे बन्द कर उसे
सुनूंगी मैं चुपचाप
देखूंगी न और तेरे
मुख की ओर निहार
तेरे शब्द पूर्ण होंगे
जब, तब हम दोनों
बैठेंगे सदा के लिए
और वह भी प्रशान्त,
वृक्ष-केवल वृक्षही
अंधेरे में चुपचाप
कहेंगे हृदय-बात।
रात उघारेगी होगी
पावेगा उदय प्रात
एक दूसरे की आंखें
देख देख साभिलाष

न्यारे न्यारे मार्गपर
करेंगे और प्रयाण।
कह दे ओ प्रेमी मेरे
गाया है क्या तूने गान।

---

(३०)

स्वप्नों के नभ में मेरे
घूमने फिरने वाला
सायान्ह का है तू मेघ।
खींचती हूं तेरा चित्र
सजाती हूं तुझे और
वैसे, जैसे चाहता है
अत्यातुर मेरा प्रेम।
तू है केवल मेरा ही
मेरा ही है एक मात्र,
मेरे अनन्त स्वप्नों में
ओ करने वाले वास।
तेरे हैं गुलाबी-लाल
पद, मेरे हृदय की
लालसा के पा प्रकाश,
संग्रह करने वाले
ओ! मेरे सान्ध्य संगीत,



तेरे अति मधुर हैं
मेरी दुःख मदिरा के
आस्वादन से अधर ।
तू है केवल मेरा ही
मेरा ही है एक मात्र
मेरे निर्जन स्वप्नों में
ओ करने वाले वास !
मैंने निज वासना की
अँधेरी से तेरी आँखें
बनादी तिमर मय,
अनिमिष नजर की
गहनता की मेरे ओ
करने वाले शिकार !
मैंने तुझे पकड़ा है
जकड़ लिया है और
मेरे प्यारे ! फैलाकर
गानकी अटूट जाल,
तू है केवल मेरा ही–
मेरा ही है एक मात्र,
मेरे अमर स्वप्नों में
ओ करने वाले वास !



(२१)

मेरे हृदय ! पाया है
वनके उस पंछी ने
तेरे नयनों के मांहि
उसका गहनाकाश,
प्रभात के समय का
भूलना हैं वे नयन
ताराओं के हैं प्रभुत्व,
उनकी गहनता में
पाये लय मेरे गान।
मुझे उस गगन में
उसकी एकान्त-शांत—
अनन्तता के बीच
केवल तड़पने की
दे दो बस इजाजत
उसके घनों से मुझे
प्रेम से चिपकने दो
उसकी सूर्यप्रभा में
भली भांति निज पांख।

(३२)

कहे मुझे मेरे प्रेमी !
जो ये सब होवे सत्य
कहे मुझे जो हो सत्य,
जब ये नयन दोनों
चमचमाट करते हैं
तब तेरे हृदय में
अंधकार मेरे अभ्र
देते हैं उत्तर भीष्म,
क्या यह सत्य है कि:—है
अधर मधुर मेरे,
अन्तर में प्रथमही
उदय हुए प्रेमकी
खिलती कलीके तुल्य ?
स्मृतियां हैं बनी हुई
अबतक गये हुए
बसन्त के महीनों की
मेरे अंग अंग पर ?
करती है पृथ्वी क्या
सारंगी के खसम
आलाप गान में, मेरे—

पद स्पर्श के ही साथ ?
क्या यह सच है ? जब
दिखाई पड़ती हूं मैं
रजनी के नयनों से
गिरते तुषार विन्दुः
और मेरे शरीर की
प्रदक्षिणा करती है
प्रभात की जब ज्योति
होती है वह सानन्द ?
है क्या सत्य है क्या सत्यः—
घूमता फिरा है तेरा
अकेले अकेले प्रेम
जीवन जीवन भर
भुवन भुवन बीच
करने में मेरी खोज !
क्या है सत्य क्या है सत्य
आखिरकार पालिया
तूने मुझे जब, तब
तेरी जीवन भर की
दीर्घतर लालसाने
पाली थी सम्पूर्ण शान्ति



मेरी मधुर वाणी में
रसीले नयन मांहि
मधु पूर्ण अधरों में
फरकती वेणी बीच ?
है क्या सत्य है क्या सत्य
अनन्त के गूढ़तम
मेरे लघु ललाट में
लिखे हुए हैं रहस्य ?
कहं मुझे मेरे प्रेमी—
यदि हो ये सब सत्य !

---

(३३)

प्रेम करती हूं तुझे
पीतम ओ मेरे प्यारे !
क्षमा कर मुझे मेरे
प्रेमकी तू क्षमाकर ।
आई हूं पकड़में मैं
पथ भूली श्यामा सम
जब मेरा कंपा हिया
उसका परदा उठा,

हो गया प्रकट नगन,
दया से उसको ढांक
और प्रियतम प्यारे
क्षमाकर मुझे मेरे
प्रेमकी तू क्षमाकर।
प्रेम जो न कर सके
मुझे तू पीतम मेरे।
क्षमाकर मुझे मेरे
दरदकी क्षमाकर,
दूर से न मेरी ओर
तिरछी निगाह डाल
जाऊंगी चली मैं मेरे
कोने मांहि चुपचाप
बैठूंगी अंधेर मांहि
युगल करों से और
अपनी नगन लाज
छुपा लूंगी भली भांति,
हटा मेरी ओर से ले
प्यारे और तेरा मुख
क्षमाकर मुझे मेरे
दरदकी क्षमाकर
मुझ से करता हो जो



प्रेम मेरे प्रियतम
क्षमाकर मुझे मेरे
आनन्दकी क्षमाकर,
बाढ़ से प्रसन्नता की
जब बहजाय मेरा
हिय, नमसुका मेरे
जीवन की जोखम के
मेरे त्यागकी तरफ,
जब मैं अनन्य मेरे
राज्य के सिंहासन पै
आ बैठूं, शासन करूं
स्वतन्त्रता से निर्बाध
सजायें दे पहुंचाऊं
प्रेमकी पीड़ा अनेक,
जब एक देवी-सी या
अपनी कृपालुता की
करूं दान बखशिशें,
मेरे तब गर्वका, दे
सफलता प्यारे। और
क्षमाकर मुझे मेरे
आनन्दकी क्षमाकर।

(३४)

जा मत पीतम मेरे
मुझे पूछे बिन जान,
सारीरात जगती मैं
देखते रही हूं बाट
आंखें और होगई हैं
निंदियां से भारी अब
भय है मुझ को यही
खो न कहीं बैठूं तुझे
जब सोती होऊं तवः—
जा मत मेरे पीतम !
मुझे पूछे बिन जान ।
चौंक चौंक उठती हूं
उठाती हूं और हाथ
करने को तेरा स्पर्श,
कहती हूं और स्वयं
क्या है वह एक स्वप्न ?''
एक मात्र गूंथलूं मैं
हृदय से मेरे, तेरे
पद, और जोर से लूं-
चाप मेरे सीने साथ ।

जा मत मेरे पीतम !
मुझे पूछे बिन जान



(३५)

कदाचित् तुझको मैं
जान जाऊं, जान जाऊं
बड़ी ही सरलता से,
इसलिये मेरे साथ
खेल तू रही है खेल ।
करती है अंधा मुझे
हासकी चमक से तू
छुपाने को तेरे अश्रु
जानता हूं जानता हूं
जानता हूं तेरी कला
कहेगी न कभी जो तू
धारण किये है शब्द ।
कदाचित् तुझको मैं
दे डालूं पारितोषिक
इसलिये मुझको तू
चुका भुलावे देती है
हजारों मारग मांहि ।
कदाचित् तुझे मैं

सब से घबर दूं, तू
खड़ी होती एक ओर,
जानता हूं जानता हूं
जानता हूं तेरी कला
जावेगी न कभी तेरे
मन माने मार्ग पर।
औरों के हकों से तेरा
हक है विशेष तर,
यही बात है जो, तू है
चुपचाप पूर्ण शान्त
लीलामय प्रमाद से
मेरे शुभोपहारों को
कर तू रही है दूर
जानता हूं जानता हूं
जानता हूं तेरी कला
कभी नहीं लेवेगी तू
जिसकी है तुझे चाह

(३६)

बड़ बड़ा बोला वहः—
" मेरी प्रियतमे ! उठा—
ऊपर को तेरी आंख, "



मैंने उसे, दे धिक्कार
फटकारा और कहा:—
"जा," हिला न किन्तु वह।
खड़ा हो गया सम्मुख—
मेरे वह, और मेरे
पकड़ लिये दोनों हाथ,
मैंने कहा:—छोड़ मुझे
चल हट, दूर हो, जा,
किन्तु वो जरा चिगा न।
कानों के समीप मेरे
मुख उसने ला रक्खा
देखा वक्र दृष्टिकर
मैंने, और कहा उसे:—
भारी साहस करता है—
किन्तु वो जरा टला न।
उसने दोनों ओठों न
छू लिया कपोल मेरा
थरथारा मैं कांप गई
और बोली: "शर्म शर्म"
किन्तु वो लजाया न।
उसने कुसुम एक
सजाया मेरी वेणी में

मैंने कहा:—है वे काम"
बिना हल चल किये
खड़ा रहा किन्तु वह।
उसने गले से मेरे
उतारली माला और
नाप गया निज राह
रोती पछताती हूं मैं
पूछती हूं बार बार
अपने हिये से और:—
लौट वह आया क्यों न ?"



(३७)

सुन्दरियों की सुन्दरी
तेरा ताजा कुसुमों का
डालेगी गले में मेरे
बता क्या तू रम्यहार ?
किन्तु यह भली भांति
ज्ञान में रहे अवश्य:—
एक पुष्पहार जोकि
मैंने गूंथ के रक्खा है
बहुतों के लिये है वो—
है न एक के निमित्त,



उनके लिये है वह
दिखलाई पड़ते जो
अँधेरे-उजेले बीच,
उनके लिये या है वो
करते हैं निवास जो
अन खोजे देशों मांहि,
उनके लिये या है वो
जो रसिक बसते हैं
सदा कवि गानों मध्य।
बदला देने को तुम्हें
हृदय से पूछने को
हो चुकी बहुत देर।
एक काल था कि जब
जिन्दगी थी मेरी, एक—
पुष्पकली के समान
सोरभ था संग्रहीत
उस्के गर्भ देश मांहि।
अब वह पास न है
लुटा दिया गया दूर
इधर उधर दूर
मैदानों में दूर दूर।
जादू टोना जंतर मंतर

ऐसे जानता है कौन
कर जो इकट्ठा सके
फिर उसे भर वहीं
रख सके बन्द और ?
एक को ही देने को है
हिय वश में न मेरे
अनेकों को पहले ही
दिया जा चुका है वह ।

---

(३८)

तेरा कवि एक समें
एक बार मेरी प्रिये !
तैयार कर चुका था
उसके मानस बीच
बड़ा भारी वीर काव्य,
अफसोस अफसोस
नहीं था मैं सावधान
टकरा गया वो तेरे
झन झन करने वाले—
पद नूपुरों के साथ
और पागया विकार
टूट गया वह और

होगये गानों के खण्ड
बिखट के पड़ा और
तेरे चरणों के पास ।
पुरानी लड़ाइयों के
वृत्तों का मेरा जहाजी
अनमोल बड़ा माल
उछल उछल कर
जोर से टक्कर खाके
हो गया तितर बितर
हासकी तरंगों साथ
अश्रु की गहनता में
भींज भींज गया डूब ।
मेरी इस हानि को तू
प्रेममयी मेरी प्रिया ।
भरदे मुझे अवश्य ।
अजर अमर नित्य
कीर्ति के जो मेरे हक
करने हो छिन्न भिन्न
मेरे मरने के बाद,
जीते-जी बना तो मुझे
अजर अमर नित्य
और मैं, निज हानिका

कहूंगा न शोक कुछ
तुझको न दूंगा दोष

---

(३६)

सकल प्रभात भर
एक माला गूंथने का
मैंने किया पूर्ण यत्न
फिसल फिसल कर
किन्तु गये फूल गिर ।
बैठी वहीं पर तू थी
झांपती हुई मुझको
गुपचुप रहस्य में
आतुर विनय पूर्ण
तेरे दोनों नयनों के
अनियारे कोये डाल,
करते खराबी हैं जो
बड़ी ही निर्दयता से
उन नयनों से पूछः—
किसका था वो कुसूर ।
कोशिश करता हूं मैं
गाने के निमित्त गान
' है व्यर्थ वह—'परन्तु'

एक गुप्त मन्द स्मित
करता है कंप तेरे
अधरों पै उसे पूछ:–
"मेरी असफलता का
जो है असली सबब।"
सोगन्द खाकर तेरे
स्मितवाले अधरों को
कहने दे:—कैसे मेरे
ध्वनिने स्वयंको स्वयं
छुपा दिया शान्ति बीच,
पद्मिनी के अन्तर में
मधु से छका हुआ ज्यों
होता है मधुप शान्त।
संध्या होरही है यह
समय आगया और
कुसुमों के लिये, करें
निज पखडियों को बन्द।
अनुमति मुझको दे
तेरे पास बैठने की
और मेरे अधरों को
करने दे वह काम
किया जिसको जा सके

विना बोले चुपचाप
शान्ति में–एकान्तजगे
और ताराओं की, मन्द–
मन्दतर ज्योति मांहि ।

---

(४०)

तेरे पास आता हूं मैं
जब लेने इजाज़त—
तब, तेरे नयनों पै
स्मित अविश्वास मय
चक्कर लगाता खूब ।
किया है पहले मैंने
शीघ्र शीघ्र आना-जाना
इससे तू सोचती है
आऊंगा मैं लौट शीघ्र ।
तुझे सत्य कहते हैं
होता मेरे मन में भी
ऐसा ही सम सन्देह.
क्योंकि दिन वसन्तके
समय समय बाद
फिर फिर आते लौट,
पूर्ण चन्द्र चला जाता



लौटकर आता और
करने के लिये फिर
बार बार मुलाकात,
सालों साल बार बार
लिखते हैं पीछे पुष्प
और निजी शाखाओं पै
छिटकाते हैं बहार
रुखसत ले रहा हूं
उसी तरै तुझ से मैं
केवल फिर-आने को
पीछा ही तेरे पास।
किन्तु, इन्द्रजाल को तू
थोड़ी देर रोक रख,
असभ्यता भरी हुई
जल्दी से; न दूर कर,
भेज मत, न निकल,
कहूं जब तुझको, मैं–
सर्वदा को जारहा हूं
सत्य कर उसे गह
जरा भी न मिथ्या मान,
अश्रुओं की कालिमा को

थोड़ी देर के निमित्त
तेरे नयनों की कोर
करने दे ज्यादा-श्याम,
जैसी हो पसन्द वैसी
चतुराई भरी हुई
मीठी मीठी मन्द हँसी--
तू तब करना, जब
लौट के आऊं मैं फिर

---

(४१)

सोच रक्खे मैंने जो है
गुप्त तर सुगंभीर
शब्द, तुझे कहना मैं
चाहती हूं प्रियतम!
हिम्मत न करती किन्तु
क्योंकि भय होता है ये,
कहीं तू न करे हास,
कारण यही है जो मैं
हँसती हूं अपने आप
और छुपा डालती हूं
विनोद में मजाक में
अपने रहस्य सब।

मेरे दुख दर्दों को मैं
कम कर डालती हूं
यह भय पाके:—कहीं
वैसा कर बैठे तू न।
सोच रक्खे मैंने जो है
सत्य सत्य शब्द, तुझे
कहना मैं चाहती हूं
हिम्मत परन्तु है न,
होजाती विभीत मैं हूं
उन पर करे कहीं
तू न कुछ विसवास,
कारण यही है जो मैं
उन्हें छुपा डालती हूं
मिथ्या में, कहती हुई
स्वाभिप्राय के विरुद्ध।
मेरे दुख दर्द को मैं
बना देती हूं अपंग
यह भय पाके:—कहीं
वैसा कर बैठे तू न।
कहना मैं चाहती हूं
कीमती बड़े ही शब्द

तेरे लिये जि हें मैंने
रख छोड़े हैं; परन्तु—
हिम्मत न पड़ती है
भय हो रहा है यही
मुझे दिया नहीं जावे
योग्य-मुनासिब मोल।
कारण यही है तुझे
देती हूं मैं कड़े नाम
अपनी कड़ी शक्ति का
करती हूं गर्व और।
तुझे चोट पहुंचाती हूं
इस भय से कि कहीं
तुझे न होवे विज्ञात
कभी कोई दुख दर्द।
तेरे पास चुपचाप
बैठना मैं चाहती हूं
हिम्मत न करती किन्तु
(इस भय से की कहीं)
कदाचित् मेरा हिय
बाहर निकल कर
ओठों में न हो प्रकट।



कारण यही है जो मैं
गप सप उड़ाती हूं
करती हूं बक झक
बड़ी ही छटा से शीघ्र
और मेरे हृदय को
छुपाती हूं शब्दों बीच,
मै बड़ी उदद्ृतता से
करमें मेरे करती हूं
अपने दुख दर्दों को
यह भय पाके: कहीं—
वैसा कर बैठे तू न।
चाहती हूं चले जाना
तेरे पास से मैं, किन्तु—
हिम्मत नहीं है होती,
होता है मुझको भय:—
मेरी कमजोरी कहीं
तेरे लक्ष्य में न आय,
कारण यही है जो मैं
रखती हूं सिर ऊंचा
तेरी त्यों उपस्थिति में
आती हूं हो बे-फिकर।

शाश्वत लगने वाले
तेरे कटाक्षों की मार
रखती है सर्वदा को
ताजा मेरे दुख दर्द

---

(६२)

छक कर पिये हुए
ओ पागल अलमस्त
जो तू लात मार खोले
द्वार तेरे और खेले
जानता मैं मूर्खों साथ;
जो तू खाली करे तेरे
बेग को निशीथिनी में
चुकटी उँगलियों से
बजाये श्यानप-ओर
जो तू विचित्र पथ से
चले और खेला करे
न-कुछ चीजों के साथ;
तो, मत परवा कर
जानने की काव्य और
हेतुवाद तर्कवाद।

जो तू तेरे पाल फाड़
बरसाती आँधियों के
तूफ़ानों में फेंक देवे
और तोड़े पतवार,
तो, मैं तेरा अनुयायी
बनूंगा अच्छी तरह
मेरे दोस्त दिलदार;
करूंगा अनुकरण
पीकर बनूगा मस्त
करूंगा प्रयाण और
होजाने के लिये लय।
बड़ी सूक्ष्म बुद्धिवाले
सुहृद पडोसियों की
अन्तरग सुहृदों की
विसवासू मानवों की
सोबत में खोदिये हैं
मैंने मेरे रात-दिन।
अत्युच्च विद्या ने मेरे
कर दिये श्वेत केश
और ज्यादा देखने ने
की दृग की ज्योति मन्द।
अनुपम वस्तुओं के

सार सार विभागों का
अनमोल टुकड़ों का
किया है संग्रह मैंने
लगाये हैं और ढेर।
चूर चूर उन्हें कर
कर नाच उन पर
और उन सब को दे
उड़ा वायु झोंकों माहि
क्योंकि जानता हूं मैं,—है
उच्चतर भूमि सीमा
विवेक-ज्ञान दृष्टि की
यही; पीके होना मस्त
और जो जाना विलय।
कुटिलाई भरे सारे
संकल्पों को हटने दे
जाने दे सब सब
दम्भ पूर्ण अहंकार,
मुझे खोने–भूलने दे
निराशा से भरा मार्ग।
भारी आंधी बमूलों के
चक्करों के झपाटों को
आने दे; मुझको और

मर दह लगर स
ले जाने दे उड़ाकर।
यह दुनियां साथी है
जाली माली धनियों की
जोरदार हाकिमों की
चलते कामदारों की
काम करने वालों की
आने वालों की काम में
चुस्त चालाकों की ओर,
कुछ जन ऐसे हैं जो
आसानी से आगे आके
हो जाते हैं अग्रेसर,
और कुछ आते हैं जो
योग्यता के साथ बाद
हो प्रथम श्रेणि रत्न,
होने दो प्रसन्न उन्हें
बढ़े हुए भाग्यवान
मालामाल सिद्धकाम;
और मुझे करने दो
मूर्खता से भरी बात,
क्योंकि मानता हूं मैं:—है—
अन्त सकल कामों का—

यही, पंक्ति हे ना मस्त
और पाजाना विलय।
समर्पण करने को
मैं, सौगन्द खा रहा हूं,
इसी क्षण सारे हक
नीचे पद के अधीन,
छोड़ता हूं अभिमान
विद्या बल बुद्धि का मैं
और निर्णय देने का
जांचकर सच झूठ।
स्मृति के भाजन—नौका
तोड़ दूंगा डूबा दूंगा
टपकाता हुआ अन्त्य
मेरे अश्रुओं की बूंद
बेर फल के समान
लाल-सुर्ख-मदिरा के
फैनों से कराके स्नान
करके कलई पक्की
चमकाऊंगा मेरा हास।
लक्षण नागरिक के
सुशील के सुसभ्य के
और धीरज धारी के



सियाने के गंभीर के
कर कर छिन्न भिन्न
कपड़ों की धज्जियों में
उड़ा दूंगा एक साथ।
पावन शपथ लूंगा
बनने को तृण से भी
गया बीता दीन-तुच्छ
नहीं किसी भी काम का,
होने को पीकर मस्त,
और पाने को विलय।

---

(४३)

नहीं नहीं मेरे मित्रो
चाहे जो कहते रहो
होऊंगा मैं सन्यासी न।
मेरे साथ वह भी जो
लेवेगी प्रतिज्ञा नहीं
होऊंगा मैं सन्यासी न।
मेरा दृढ़ निर्णय है:—
मिले जो न छत्रछाया
तपस्या के लिए मेरी
और एक संगातिन,

कभी किसी तरह भी
पलट के गृहस्थी को
होऊंगा मैं सन्यासी न।
नहीं नहीं मेरे मित्रो
छोड़ूगा मै कभी नहीं
अग्नि कुण्ड और बग,
लूंगा नहीं बिसराम
अरण्य मे एक ओर
करके एकान्त वास,
चूड़ियों की नूपुरों की
बिछुवों की जो न होवे
रणकार झणकार
मौजमजे करती हुई
उपजाती स्मितहास
प्रतिध्वनि जो न करे
उसकी घाटी के मांहि,
और जो, न, मंद मंद—
पवन की लहरों में
केसर से रंगी हुई—
सौरभ सनी साड़ी का
फर फरावे अंचल,
यदि उसकी शान्तता



हुई न हो शान्ततर
होकर मृदुलतर
मधुर मधुर स्वर
होते गुप चुप बात।
नहीं-नहीं, कभी-कभी
होऊंगा मैं संन्यासी न।

(४४)

पूजनीय ! महामान्य।
पाप मय दम्पती को
क्षमाकर क्षमाकर।
आज बड़े जोरों से, है—
उच्छृंखल चक्करों में
बसन्त के समीरके
झपाटे चलते हुए
उड़ाये लिये जारहे
बहुधा सुमनरज
और गिरी पत्तियों को,
और इनके साथ ही
तेरे दिये हुए सब
उड़ जाते उपदेश।
कहे मत गुरुदेव !

जीवन है मायामय
भूल भूलै–या असत्य,
क्योंकि हमने मौत से
एक अवधि के लिए
की है अनास्थिर सन्धि।
और केवल थोड़ीसी
सुरभित घड़ियों के
लिये हैं बनाए गये
हम दम्पती अमर।
आके राज–सेनाभीजो
हम पर हम्ला करे
मस्तकों को प्रबलता से
उसका हम विरोध,
कहेंगे और भाइयो।
पहुंचा रहे हो हमें
तुम्हें बड़ी हरकत, बाधा व्यर्थ।
खेलने ही तुम्हें है जो
कोलाहलकारी खेल
जाओ और निज निज
बाहुओं को बजा बजा
खेलो किसी और ठौर,
क्योंकि हम थोड़ीसी ही



अचिर स्थायी,— केवल—
कुछ क्षणों के लिए—हैं
बनाये गये अमर।
यदि मित्र जन आए
और लिया हमें घेर
करेंगे तो हम उन्हें
नम्रता से नमस्कार,
कहेंगे वचन और:—
एकाएक आया हुआ
यह सौभाग्य-विधान
हमारे लिये हो रहा—
है, अधिक-से-अधिक
डालने को अड़चन
अनन्त अन्तरिक्षमें
हम जहां दम्पति हैं
स्थान है बहुतकम;
क्योंकि इस बसन्तके
समय में कुसुमों के
ठट्ठ के लगे हैं ठट्ठ
छूते मधुप करों को
कर फैलातीं हुई पाँखें
एक दूसरे से भिड़

खा रही है य रगड़
छोटा है हमारा स्वर्ग
बड़ी भारी तंगी वाला
सकड़े-से-सकड़ा है
नन्हासा हमारा स्वर्ग,
जहां पर हम दोनों
एकमात्र हमदोनों
प्रेम रँगे हमदोनों
दम्पती ही है अमर ।

---

(४५)

सारे महमानों को जो
जाने वाले हैं अवश्य
दे उन्हें ईश्वरीय
सफलता के आशीर्वाद,
और उनके पांवड़ों के
सकलपद चिन्हों के
बुहार के कर साफ ।
धार तेरे अंतर में:—
मुस्कराहट के साथ
जो कुछ होवे आमान,
पासका-और विशुद्ध ।
आज उन दैत्यों की है
दावत, तो जानते हैं



नाम मात्र को भी नहीं:—
मरेंगे वे किस वक्त !
तेरी मन्द मुसकान
होने दे, किन्तु अकाम:—
मन्द मन्द रवमय
जलकी तरंगों पर
पड़े हुए प्रकाश की
झलमल के समान ।
समय की अनी पर
नाचने चलता से
दे, तु तेरे जीवनको;
पत्तो के किनारे पर
ओसबूंद के समान ।
बजा तेरी सारंगी के
तारों पर अनेक रागें
स्वर ताल लयवान ।

---

(४६)

छोड़ गई मुझे तुम्हें
और नापी निज राह,
मेरे लिये मैंने सोचा
ये कि, जमालूंगा तेरा

हिय में एकान्त मूर्ति
और स्वर्ण गान मांहि,
किन्तु आह, मन्द भाग्य !
समय न है विशेष
है यह बहुत कम।
व्यर्थ बीता जारहा है
जीवन हा वर्षों वर्ष
बसन्त की बहार के
उड़े जारहे हैं दिन,
कुसुम क्षण भंगुर
पाते वृथा है विनाश,
मुझे ज्ञानी कहते हैं:—
"जीवन है"! "है परन्तु
पद्म पत्र ओसबिन्दु।"
क्या मैं त्याग कर डालूं
इन सब वस्तुओं का
ताकने के लिये मात्र
उसकी ओर, जिसने
देदी मेरी ओर पीठ ?
होगा ये जंगलीपन
और बेवकूफी पूर्ण,
क्योंकि वक्त है न ज्यादा



किन्तु है बहुत कम।
आओ तब: रमझम
रमझम पददेती
मेरी बरसाती रातें
आओ मुस्कराती हुई
सुप्रकाशित शरद,
चारों ओर चुम्बनों को
बरसाती सप्रमाद
आवसन्त की बहार,
आओ तुम आओ तुम
आओ सब आओ तुम।
मेरी परम लाडली
तुम जानती हो, हम—
सब हैं—मरण—शील,
क्या है यह बुद्धिमानी
तोड़ना किसका दिल,
उस एक के निमित्त
लेकर जो चलीगई
कहीं पै अपना दिल?
समय न है विशेष
किन्तु है बहुत कम।
बड़ा है मधुर यह:—

जमाना किसी कोन में
आसन गाने को और
लिखने को काव्य मे,—कि
मेरा तो हो सभी तुम्हें
सारा–का–सारा ब्रह्माण्ड ।
है यह मैदान शौर्य
बड़ी भारी बीरता है;
किसी एक की पीड़ा को
करलेना आलिंगन,
दिलासा पाने का नहीं—
करना और निर्णय ।
किन्तु एक नया मुख
मेरे दरवाजे में से
प्रथम-ही-प्रथम है
करहाता झांक,
उसकी उठ रही है
मेरे नयनों की ओर
सुन्दरतर निगाह ।
रह नहीं सकता हूं
पोंछे बिना मेरा आसू
और बिना पलटे मैं
अपने गान का राग;

समय न है विशेष
किन्तु है बहुत कम ।

(४७)

मानोगे वैसा जो तुम्ह
अपना मैं कर दूंगी
झटपट बन्द गान ।
हृदय में तुम्हारे जो
क्षोभ उपजाती हों भी
तुम्हारे चहरे पैसे
हटा लूंगी मेरी आंख ।
हवाखोरी करने में
अकस्मात यदि तुम्हें
संकुचित कर देवे
मेरा पद संचार, तो
हट जाऊंगा मैं शीघ्र
एक ओर, और शीघ्र
गहूंगा दूसरा मार्ग ।
जो तुम्हें घबरावेगा
पुष्पहार गूंथने में
तो मैं शून्यता से तेरे
बगीचे को दूंगा छोड़ ।

जलको बन रगा जो
मर्यादा रहित. और
जारों से बहता हुआ
महा निरंकुश, वह;
तो मैं मेरे बजरे को
बल से न बढ़ाऊंगा
तेरे-किनारे की ओर ।



(४८)

मुक्तकर मुक्त मुझे
बन्धनों से मेरी प्यारी !
महा माधुरी के तेरे
बन्धनों से मुक्तकर ।
और नहीं, और नहीं
चुम्बनों का यह मद्य !
बड़े भारी सुगन्धित
द्रव्यों के धूपकी यह
काली धूम बेतरह
घोटती है मेरा दम
अकुलाता है हृदय
खोल सब दरवाजे
जगै कर प्रभातका



आने के लिये प्रकाश।
तेरे लाड़चावों के मैं
संपुटों में छुपा हुआ
होगया तुझमें गुम।
मुक्तकर मुक्त मुझे,
और पीछा मुझको दे
मनुष्यत्व-पुरुषत्व
करने के लिये तुझे
समर्पण यह मेरा
स्वतन्त्रता पायाहिय।

(४६)

पकड़ता हूं उसके
करोंको, दबाता हूं मैं
उसको और, अपने
हृदय स्थल के साथ।
करता हूं—प्रयत्न मैं:—
उसकी सुन्दरता से
भरने को मेरे बाहु.
लुटने को चुम्बनों से
उसका मधुर हास,
पीने को दृगों से उसके

श्यामल अपाङ्गपात।
आह ! पर कहां है ये ?
कौन खींच सकता है
गगन से नीला रंग ?
करता हूं प्रयत्न मैं
सौन्दर्य पकड़ने को:—
वह भुरकी डालता है
करता है मंत्र-मुग्ध
भटकाता साथ साथ
सिर्फ मेरा तन मेरे
हाथों में है देता छोड़।
निष्फलता पाया हुआ
हारा थाका हांपता मैं
आजाता हूं पीछा लौट।
स्पर्श कर सकता है
उस कुसुम का कैसे
तन ?—कर सकता है
आत्मा ही जिसका स्पर्श !

---

(५०)

मेरे प्रेमपात्र ! मेरा
लालसा भरा है हिय:—

तेरे साथ हो मिलाप
वो मिलाप, सर्वनाशी
मौत के जो है समान,
मौत की भी करे मौत
मिटादे सब जहान।
बहाकर लेजा मुझे
महा तूफ़ान सदृश,
तोड़ फोड़ मेरी निद्रा
लूट लेजा मेरा विश्व।
इस पैमाली के बीच
पूर्ण नग्नता के साथ
अनुपम सौन्दर्य में
होवे हमारा अद्वैत।
अफ़सोस! मेरी व्यर्थ
लालसाओं के निमित्त,
कहां है मिलन-आशा
तुझमें समाना छोड़,
मेरे कृष्ण! मेरे श्याम!
मेरे रास रसेश्वर!

---

(५१)

कर समाप्त अन्तिम—
गान तब, और हमें
होने दे तु अलग।
भूल इस शतको जा
याद न रख; रजनी
होनी है न जब और।
अपनी भुजाओंमें मैं
किसे पकड़ लेनेका
करता हूं मै प्रयत्न ?
बनाये जा सकते हैं
कभी नहीं कैदी स्वप्न!
दबाते हैं उत्कंठित—
व्यग्र मेरे हाथ, मेरे
सीने से शून्यपन को,
चूर चूर करते हैं—
वे मेरे हिय को ओर।

---

(५२)

हो गया क्यों वह दीप ?



पवन के झपाटों से
बचाने को मैंने उसे
की थी अपने वस्त्र से
आड़:—कारण है यही:—
हो गया जो वह दीप !

⚜ ⚜

मुरझाया क्यों कुसुम ?

⚜ ⚜

उत्कंठामय प्रेम से
हृदय से दबाया उसे
मैंने, कारण है यही
मुरझाया जो कुसुम ।
बहते हुए ओघका
सूख गया क्यों प्रवाह ?

⚜ ⚜

मैंने बांधा एक पुल
करने को उपयोग
मेरे, कारण है यही
बहते हुए ओघका
सुख गया जो प्रवाह !
टूटे क्यों वीणा के तार ?

खूटियां मरोडी खूब"
उसकी शक्ति बाहर के
बजाने के लिये स्वर
मैंने, है कारण यही
टूटे क्यों वीणा के तार।

(५३)

लाज में मुझे क्यों तुम्ह
डालती हो ऐसे देख ?
आया मैं नहीं हूं एक
भिखमंगे के समान।
बिताने का, एकमात्र
बिताने को कुछ घड़ी
खड़ा तुम्हारी कोठी के
घेरे के अन्त पर हू
बाग के हाथे बहार।
लाज में मुझे क्यों तुम्ह
डालती हो ऐसे देख ?
तुम्हारे उपवन से
कियेना इकट्ठे मैंने
गुलाब के पुष्प और



तोड़ा नहीं एक फल ?
मारग के तरफ़ की
छाया में लिया है मैंने
नम्रता से बिसराम;
खड़ा रह सकता है
जहां पर हरएक
मुसाफिर अनजान।
एक भी न मैंने तोड़ा
गुलाब का है कुसुम।
हां थक गये थे मेरे
दोनों पैर, आगिर थे
मेघ के झपाटे और,
झोले खाती हुई नाना
बासों की टहनियों से
चलती वायु लहरें
करती थीं सन्सनाट।
बादल भागे जाते थे
तितर बितर होते
गगन में चारों ओर:—
मानों भगे जारहे हों
युद्ध में खाकर हार

इधर उधर, मरे –
मारके भगोड भट
थके थे मेरे चरण।
मालूम नहीं है मुझे:–
विषय में मेरे, सोचा—
तुम्हने क्या? और तुम्ह
प्रतीक्षा करती हुई
किसके लिए खड़ी थी
अपने ही द्वार पर?
इंतजार भरी हुई
तुम्हारी दृग जोड़ीको
बिजली की दमकने
कर दिया था रोशन।
कैसे मुझे पड़े जान:—
देख सकती हो मुझे
जहां खड़ा हुआ था मैं
तुम्ह अंधकार मांहि?
मालूम नहीं है मुझे
मेरे विषय में किये
तुम्हने क्या थे विचार।
हो गया दिवस पूरा,

थोड़ समय के लिये
ठहर गया है मेघ:—
तुम्हारे उपवन के
एक अन्तके तरुकी
छाया को मैं छोड़ता हूं,
बैठक इस घास की
छोड़े ही देता हूं और।
हो गया है अन्धकार
बंद करो निजद्वार
जाता हूं अपने मार्ग
दिनका हुआ है अन्त।

(५४)

टोकली को लिये हुए
जल्दी जल्दी पैर उठा
जा तुम्ह रही हो कहां?
होने पै इतनी सांझ
खुला है न अब हाट
हो चुके हैं सोदा सूत।
सोदा सुत वाले सब
निज निज घर आए

निज निज भार संग,
गांव के वृक्षों पर से
चन्द्रमा रहा है ताक,
नदी पार करने को—
डोंगियों की बुलाने की–
ध्वनि की प्रतिध्वनियां
पारकर काला जल
दौड़ी चली जा रही हैं
दूर—घासफूंस वाले
कादेसने स्थान तकः—
सोते जिस जगह हैं
जंगली ग़रीबजन।
टोकली को लिये हुए
जल्दी जल्दी पैर उठा
जा तुम्ह रही हो कहां
होने पै इतनी सांभ
खुला है न जब हाट
हो चुके हैं सोदा सूत ?
अपनी अँगुलियों को—
रक्खी हैं, निद्रादेवी ने
पृथ्वी के नयनोंपर;

होरहे हैं पछियों के—
शान्त बिसराम-स्थान
बांसों की पत्तियों का है
और शान्त मर मर।
निज निज कामों पै-से
घर आये श्रमजीवी
अपनी चटाइयों को
बिछा चुके बाड़े माहि।
टोवलेको लिये हुए
जल्दी जल्दी पैर उठा
जा तुम्ह रही हो कहां
होने पै इतनी सांझ
खुला है न जब हाट
हो चुके हैं सोदा सूत !



(५५)

जब तुम्ह चले गये
तबथा ठीक मध्यान्ह,
और बहुत तेज था
आसमान-पर भान।
कर मैं चुकी थी तब
काम मेरे, बैठी थी त्यों-

अकेली झरोख माहि,
किया था तुम्हने जब
दोपहरी में प्रयाण।
चचल चलती हुई
पवन की आरही थीं
लहरियां, फटकती—
फटकती नये धान,
बड़ी बड़ी दूरी पै के
खेतों की लेकर गन्ध।
गटर गूं गटर गूं
कर रहे थे छाया में
बिनाथके कबूतर,
कमरी रही थी बोल,
खबर लाती दूरी के—
कई एक खेतों की-थीं
गुन गुन मचा रही
रसवती मधुकरी
मेरे कमरे के मांहि,
दुपहरी की गर्मी में
सो रहा था सारा गांव,
चारों ओर छारहा था

सन्नाटा-सा सभी भाँति,
होरहा था सुनसान,
चल न रहे थे मार्ग।
अकस्मात मूर्छा पाके
गुलाब के कुसुमों की
पत्तियों का मर गया
मर्मर मर्मर नाद।
नयनों को ऊंचे किये
एक टक दिये दृष्टि
देखती हूं नभ ओर
गूंथती हूं नीलिमा में
एक के मैं नामाक्षर
जिसको मैं रही हूँ जान,
तब तक, जब तक
दुपहरी की गर्मी में
सो रहा है सारा गांव।
भूल मैं गई थी मेरे
बालों का सँवारना भी
लटक रही थीं लटें
बिखर रहे थे केश
मन्द मन्द पवनकी

लहरें चलती हुईं
खेल मेरे कपोलों पै
खेलती थी उनके संग।
छायावाले किनारों में
बहती थी नदी मन्द
हिलते नहीं थे कुछ
बादल सफेद सुस्त।
बालोंका संवारना भी
मेरे मैं गईथी भूल।
चलेगये जब तुम्ह
तब था ठीक मध्यान्ह।
मार्गकी थी धूलितप्त,
थे धगधगाते खेत,
घनी पत्तियों में बैठे
गुटकते थे कपोत,
कुमरी रही थी बोल,
बैठी थी अकेली ही मैं
मेरे झरोखे के बीच
चले गये जब तुम्ह।

(५६)

मैं थी उन कई एक
ललनाओं में-से एक
प्रतिदिन होनेवाले
गृहस्थी के कामों में जो
रहती है मशगूल।
मुझको अकेलीको क्यों—
अलहदा करादिया
और ले आये अलग ?
साधारण जीवन की
हमारे ठंडी छाया से
इधर-इतनी दूर ?
प्रकट न किया हुआ
प्रेम है पवित्रतर
छुपे हुए हृदयके
दरद की अँधेरी में
करता चमचमाट
अनमोल हीरे सम।
विलक्षण दिवसों के
तेजमें वो दिखता है
दयापात्र अन्धकार।

ताड़ डाला तुम्हने हा !
ढँकना हिये का मेरे
खुले हुए मैदान में
जोरों से घसीट फैंका
छटपटाता मेरा प्रेम।
सदा सर्वदा के लिये
जमींदोज करडाला
छायामय कोना, जहां
प्रेम ने छुपा लिया था
अपना निवास-स्थान,
सदा वैसी-की-वैसी ही—
ललनायें हैं अन्यान्य।
उनकी अत्यान्तरिक —
अवस्था की ओर, न की—
किसी एकने भी कुछ
नामको भी तांक झांक,
जानती नहीं है और
स्वयं वे अपना भेद,
हँसती है हौसेस वे
आंसू खैरती हैं और
बड़बड़ करती हैं

करती हैं नाना काम:—
जाती हैं मन्दिर को वे
प्रतिदिन, लगाती हैं–
अपने अपने दीप,
लाती हैं भरभर के,
और नदी से सलिल।
आश्रय विहीनताकी
थरथराती लज्जा से–
मैंने आशा की थी—मेरा
जायगा बचाया प्रेम
तुम्हने परन्तु मुख
फेर लिया एक ओर।
सन्मुख तुम्हारे तो है–
खुला हां! तुम्हारा मार्ग
काट डाला तुम्हने मेरा
लौटकर जाना किन्तु।
और मुझे छोड़ दिया–
टकटकी बांधकर
अनिमिष नयनों से
रात दिवस देखते–

हुए जग के सन्मुख—
आवरण-हीन नग्न ।



(५७)

ओ जगत ! मैंने तेरा
चूंटा था कुसुम रम्य
हृदय से दबाया त्यों
चुभा गहरा कंटक ।
जब दिन चुक गया
हो गया अंधेरा और
जान पड़ा मुझे तब
होगया कुसुम म्लान
किन्तु घर बनाकर
जम बैठा है दरद ।
सौरभ और मानसे
भरे हुए रम्य रम्य
तेरे पास ओ जगत ।
आवेंगे कुसुम और,
किन्तु, कुसुम सञ्चय
करने का समय मेरा
होगया है परिपूर्ण,



मेरे पास है न मेरा
--काली रात में--गुलाब
केवल बनाके घर
जम बैठा है दरद।

---

(५८)

एकदिन प्रातःकाल
आई कुसुमोद्यान में
एक अंधी कुमारिका
भेंट करने को मुझे
कमल की पत्तियों को
ढके एक पुष्पहार।
उसको पहन लिया
अपने गले में मैंने
और मेरे नयनों से
निकल पड़ी अश्रुधार;
मैंने उस लड़की को
प्यार किया और कहा
वैसी अन्धी है तू जैसे
कुसुम हैं ये सकल,
जानती नहीं तू स्वयं

कैसा है सुन्दर तेरा
अनुपम उपहार।

---

(५६)

केवल विधाता के ही
हाथ का न काम है तू
सुन्दरी ओ वामा ! किन्तु
पुरुषों का भी है तू काम।
तुझको सजाते हैं वे—
सदा, निज हृदयों के
सौन्दर्य से अविराम,
कविजन गूंथते हैं
तेरे लिये रम्य जाली
सुबरण कल्पना की
डोरियों से रमणीय
और तेरी आकृति को
नवनव अमरत्व
दे रहे है चित्रकार
देता है समुद्र मोती
खाने चांदी सोना रत्न,
ग्रीष्म के उद्यान देते
विविध कुसुम रम्य,

तुझे सजाने के लिये
ढांकने के लिये तुझे
तुझे बनाने के लिये
बड़ी भारी श्रीसम्पन्न।
मनुष्यों के हृदयकी
कामनायें बनाती हैं
यौवन पै तेरे, निज–
गौरवका नन्हा स्थान।
आधी तो तू अंगना है
और आधी तू है स्वप्न।

(६०)

जीवन की गर्दी और
हल्ले के बीचमें की
ओपरम सुन्दरता
पत्थर पै खुदी हुई!
खड़ी है तू मूक शान्त
अकेली और अलग,
तेरे चरणों की ओर
बैठ कर महाकाल
करता है मरमर :–
"बोल बोल मेरी प्यारी

मेरी नववधू बोल
प्रियतमे मुझसे बोल।"
किन्तु वाणी पत्थर में
तेरी हो रही है बन्द
हिले ना हिलाई ऐसी
ओ सुन्दरता परम !

---

(६१)

शान्ति मेरे हिय शान्ति
बिछोह के समय को
होने दे मधुरतर
होने दे न मौत किन्तु
होने दे सम्पूर्णपन।
निकलने दे स्मृति में
प्रेम और संगीतों में
दुख दर्द पीड़ा सब,
गगन की उड़ानका
विश्राम के स्थानों पर
पाखें बन्द करने में
होने दे सर्वथा अन्त,
होने दे तेरे युगल—
करका अन्तिम स्पर्श—

सभ्यता से होले होले
मृदुल मृदुलतर
रजनी कुसुमसम,
अन्त ओ सौन्दर्यमय !
खड़ा रह छिनभर
अबभी, कहजा तेरे
—चुप्पीमें—अन्तिम शब्द,
करता हूं तुझको मैं
नमस्कार, और मेरा
दीप उठाता हूं ऊंचा
करने के लिये तेरे
मारग पर प्रकाश।

---

(६२)

सपने के रेतवाले
पथ पर गया था मैं
उस प्रिय सुन्दरी को
खोजने के लिये, जो थी—
मेरी, अन्य जन्म मांहि,
एक ऊजड़ गली के
अन्तिम विभाग में था
स्थिर उसका मकान

सायंकाल के समय
उसका मयूर पाला
बैठा बैठा सोरहा था
अपनी ही पांख पर ।
इनके ही कोने में था
कबूतर और शान्त,
उसने अपना दीप
द्वार पर नीचे रक्खा
होगई वहां वो खड़ी
मेरे साम्हने ही पास,
और लगी पूछने यों
धीमी-सी कर अवाज :—
"हो तुम्ह प्रसन्न मित्र ?"
किया उत्तर देने का
प्रयत्न था मैंने, किन्तु—
खो गई थी हमारी भाषा
भूल पड़ गई थी और
याद किया याद किया
बार बार याद किया
किंतु याद आये नहीं
मुझको हमारे नाम ।

उसके दोनों नेत्रों में
झलक रहे थे अश्रु,
उसने दहना हाथ
बढ़ाया निज, मेरी ओर
मैं उसे पकड़ कर
खड़ा रहा चुपचाप,
सायंकालिक वायुकी
लहरों में हमाराथा
होगया दीपक मन्द
और पागया निर्वाण ।



(६३)

आवेगा हाँ मुसाफिर !
रात है सुशान्त और
अन्धकार होरहा है
मूर्च्छित जंगल पर ।
दीपक है प्रकाशित
हमारे झरोखे—बीच,
ताजा हैं कुसुम सब
और, मदभरी आँखें
जगती हैं अबतक ।
क्या यह समय आया

हाने को तेरा बिछोह !
जावेगा ही मुसाफिर ?
तेरे पदों को हमने
बांधकर रक्खा न है
प्रार्थना करती हुई
हमारी भुजाओं बीच ।
खुलरहे तेरे द्वार,
खड़ा है तुरंग तेरा
सजा हुआ द्वार पर ।
किया था जो यत्न तेरी
यात्रा में देने का बाधा
किया था वह परन्तु
गा—गाके हमारे गान,
किया था प्रयत्न सदा
तुझे रोक लेने का जो
किया था वह परन्तु
हमारी निगाहें डाल ।
यात्री ! रख लेने को हैं
असमर्थ हम तुझे
अश्रुका है समुदाय
केवल हमारे पास ।
नेत्रों में जलता तेरे



क्या धगधगाता अग्नि ?
दौड़ता है रक्त में क्या
बेचैनी का ज्वर-ताप ?

तुमसे विनयमय
आती तुझे क्या पुकार ?
गगन में तारात्रों में
भयंकर जादू तूने
पढ़ा है क्या ?—रातने जो:—
—तेरे हृदय के मध्य—
मुहर लगाये हुए
गुरुतर संदेशों के—
संग, किया है प्रवेश,
शान्ति से वैचित्र्य साथ ।
करता नहीं है जो तू
आनन्द के सम्मेलन की
परवा ओ थके हिय !
और यदि चाहता है
एक मात्र शान्ति शान्ति,
तो हम हमारा दीप
निर्वापित कर देंगे
सारंगी सितार वीणा

आदिको करग शान्त,
पत्तियों की होती होगी
मुरमुर वहां हम
अन्धकारमें बैठेंगे
चुपचाप महाशान्त।
थका हुआ तारापति
डालेगा किरणें निज
पीली तेरे द्वार पर।
निद्रारहित कौनसे
आत्माने ओ मुसाफिर!
मध्यरात्रि के हियेमें
कर लिया तेरा स्पर्श?



(६४)

मार्गकी धगधगाती
धूलिपर मैंने निज
बिता दिया सारा दिन।
सांझ की ठंडी में अब
थककर खड़ा हूं मैं
सरायके द्वारे पर
खटकाता हुआ द्वार।
ऊजड़ होरही है वो

टूटी फूटी खंड बंड ।
हरे हरे 'अष्ट'-तरु
फैला रहे हैं अपनी
–भूखी और दृढ़सत्ता
जमाती–जड़ों को खूब
दीवारों की लम्बीचौड़ी
ऊंडी दरारों के बीच ।
दिवस थे वेभी जब
बहुत दूर दूर के
प्रवासी यहां आते थे
थके हुए चरणों को
करते थे साफ़ और
मिटाते थे वे थकान,
चटाइयां बिछाते थे
प्रारम्भिक चन्द्रमा की
पीली-पीली चांदनी में
खुले आंगन के माहि
और उन पर बैठे
करते थे आपस में
अन्तरअमरे नये
विचित्र देशों की बात ।
ताजा हुए जाते थे

सब प्रातकाल में वे
जब मित्रता से पूर्ण
देते थे पंछी आनन्द,
विविध कुसुम और
करते सलामियां थे
मारग की तरफ से
झुके शिर उनकी ओर।
किन्तु एक दीपिका भी
—आया जब यहां पर
मैं—देखती न थी बाट।
भूलकर छोड़ी हुई
सांझके दिये की काली—
बत्ती की धुआं के चिन्ह
—भीतसे अन्धनेत्र से—
देखते थे ताकताक,
सूखी हुई तलैया के
समीप की झाड़ियों में
जुगनू रहे चमक
और शाखायें बांसों की
घासवाले मार्ग पर
रही निज छाया डाल।
मैं हूं दिन के अन्त में



किसी का न महमान।
सन्मुख खड़ी है मेरे
बहुत ही लम्बी रात
और मैं गया हूं थक।

---

(६५)

है तेरा फिर आव्हान ?
होगया है सायंकाल,
मेरे चारोंओर थाक
लिपट गई है वैसे:—
जैसे विनय करती—
प्रिया के गलबाहीं दे
जाते हैं लिपट दोनों
शिथिल शिथिल हाथ।
तूने किया क्या आव्हान ?
दे दिया है मैंने तुझे
सारा-का-सारा दिवस
क्रूर निर्दय स्वामिनी !
मेरी रात को भी क्या तू
लूट लेगी जोर कर ?
किसी जगा अन्त तो है
हरएक वस्तुओं का ?

अँधेरे की तो स्वय है
गंभीर एकान्त शान्ति,
करेगी क्या तेरी ध्वनि
उसमें प्रवेश और
मुझपै प्रहार वार ?
सन्ध्या क्या निद्राके गीत
गाती नहीं तेरे द्वार ?
क्या तेरे करुणाहीन—
स्तम्भ पर गगन को
चमकाते कभी नहीं
तारे धरे पाँख शान्त ?
क्या तेरे उपवन में
धूलि पर गिरते हैं
न कभी कुसुमवृन्द
पाकर मृदुल मृत्यु ?
बुलावेगी ही मुझे क्या
श्रो अशान्ति की ही मूर्ति ?
अच्छा तो मेरी प्रियाके—
ग्लानि भरे नयनों को
देखने दे व्यर्थ बाट
लगाने दे अश्रु-झड़ !
जलने दो दीपक को



एकान्त गृहके मांहि
ले जाने दो छोटी नावें
थके हुए मजूरों को
उनके निजके घर।
पीछे डाले देता हूं मैं
मेरे सब सपनों को
और करता शीघ्र हूं
तेरे आव्हानकी ओर।

---

(६६)

एक घूमता फिरता
खोज रहा था प्रमत्त
पारसमणि को नर।
उसके थे पीले बाल
उलझे धूलिसे भरे,
छाया सा तन था जीर्ण,
जोरों से दबे हुए थे
दोनों हीः—अधर-ओठ
बन्द किये हुए निज—
हृदयकपाट—सम।
उसकी जलती आँखें
थीं साथिन को खोजने

जुगनू के दीप-तुल्य।
गर्जना कर रहा था
उसके सन्मुख महा
सलिल निधि अनंत।
धग्धग करती हुई
तरंगें सदा करती हुई थीं
छुपे खजानों की बात।
अज्ञानता को हँसती
जानती न उनके थी
जो; सारांस, मर्म, अर्थ।
यद्यपि रही थी उसे
आशा नहीं बाकी कुछ
तदपि लिया था कुछ
उसने न बिसराम।
अबतक क्योंकि पूर्ण
भली भांति होगई है
उसकी जीवन खोज।
जैसे जलनिधि सदा
फैलाता है निज भुज
अप्राप्य वस्तु निमित्त
गगनमंडल-ओर:—
जैसे तारे फिरते हैं



चक्र में रखे जते हुए
अवधि का लक्ष्यविन्दु
किन्तु सकते हैं पा न:—
वैसे ही, वह सुनसान
किनारे पै नर मत्त
धूलि भरी पीली पीली—
लटों वाला अब तक
पारसके खोजने में
कर रहा है भ्रमण।
एक दिवस गांव के
एक लड़के ने आके
पूछा:— "कह मुझे तूने
कनक की करधनी
कहां यह पाई है, जो
है तेरी कमर मांहि?"
उस प्रमत्त नरने
चौंक कर एकदम
देखा तो सच्चा सुवर्ण!
देख पड़ा वहीं! जहां—
लोहा था एक समय;
सपना नहीं था यह,

किंतु जान पड़ा नहीं
कब वो गया बदल ।
उसने बड़े जोरोंसे
अपना कपाल कूटा:—
कहां ? हा ! कहां था वह ?
प्राप्त हुई सफलता को
जाने बूझे बिन हाय !
बढ़ती बहुत की थी
उसने एक पल में:—
कंकर उठाके लेना,
छुवाना करधनीसे,
और उन्हें फेंक देना
बिना देखे परिणाम
पानेका परिवर्त्तन,
ऐसे, उस प्रमत्तने
पाया और खोभी दिया
स्पर्शमणि अनमोल ।
पश्चिम दिशामें सूर्य
नीचे उतरे जाता था
सुनहरी था गगन ।
गोपाब पीला लौट्रा

खोये हुए खजानेको
खोजता हुआ प्रमत्त;
गई हुई शक्ति साथ,
झुके हुए अंग-संग,
—जड़से उखड़े हुए
तरुवर के सदृश—
धूलि मांहि मिले हुए
और हियके सहित ।

---

(९७)

यद्यपि हौलेसे पांव
रखती आती है सन्ध्या
देती है इशारे और
रोकने को सारे गान,
यद्यपि सकल तेरे
चले गये हैं संगाती
करने को बिसराम
और तू रहा है थक ।
यद्यपि अन्धकार में
धुरक रहा है डर—
और चेहरा नभका

अभमें गया है छुप,
तदपि ओ मेरे पंछी !
सुन, मेरी बात सुन,
न कर तेरी पांखोंको
बंद, पछी ! मेरी सुन ।
जंगलकी पत्तियोंकी
नहीं है नहीं है वह
ग्लानि, है जलधि का—
सुसवाट, अंधेरेके—
काले सर्प के समान ।
फूली हुई चमेली का
नृत्यन है, चमचम—
करता हुआ है फेन ।
आह ! कहां प्रकाशित
हरा है किनारा ? कहां
तेरा है निवास-स्थान ?
पंछी ! अयि मेरे पंछी !
सुन, मेरी बात सुन,
न कर तेरी पांखोंको—
बंद पंछी मेरी सुन ।
तेरे पथके साम्हने

खड़ी है अकेली रात,
छाया पूर्ण पहाड़ों के
पीछे उषा लेती नींद,
घंटों को गिनते हुए—
तारे रोकते हैं श्वास,
फीका चांद तैरता है—
गंभीर रजनी पर,
पंछी ! अयि मेरे पंछी !
सुन, मेरी बात सुन,
न कर तेरी पांखोंको
बंद पंछी ! मेरी बात सुन ।
तेरे लिये वहां पर—
आशा न है, है न भय,
शब्द न है, है न कुछ,
कानोंमे करती बात
नहीं है बड़ी पुकार,
नहीं है मकान, सेज,
करनेको विसराम,
एकमात्र तेरी ही है
बाजुओंकी जोड़ी और
मार्गहीन आसमान,

पञ्छी ! अयि मेरे पञ्छी !
सुन, मेरी बात सुन,
न कर तेरी पांखोंको
बंद, पंछी ! मेरी सुन।



(६८)

सर्वदाको रहता है
कोई नहीं मेरे भैया !
कोई नहीं है अमर,
स्थायी है न कोई वस्तु,
यह मनमें सोचके
मनाता रह आनन्द ।
जीवन हमारा है न
पुरातन भार एक
बहुतही लम्बी यात्रा
हमारा नहीं है मार्ग,
कवि एक-का-एकही
गानेके निमित्त न है
एक जमाने के गान ।
कुसुम मुरझाते हैं
और मर भी जाते हैं,



पहनने वाले उन्हें—
किन्तु, करते हैं नहीं
सर्वदाके लिये शोक,
मनमें यों सोच भैया!
मनाता रह आनन्द।
संगीत विद्याके सभी
मिश्रणकी, परिपूर्ण—
कलाओंकाभी अवश्य
होता है पूर्ण विराम,
जीवन नीचे गिरता
है, निज सूर्यास्तमय
सुनेरी प्रतिबिम्बों में
लेनेको जलसमाधि।
जावेगा बुलाया प्रेम
अवश्य उसकी क्रीडा से
पीजाने को दुख दर्द—
और, देने के निमित्त—
जन्म अश्रुओं का स्वर्ग,
मन में यों सोच भैया
मनाता रह आनन्द।
करते हैं जल्दी हम

निज पुष्प चुनने की
चलते पवमानों से
कहीं वे न लुट जाँय
शीघ् बहाता है वह
रक्तको हमारे और
करता है तेज आंख
लेने को बहुत जल्दी
बिना कहे ही चुम्बन,
क्योंकि देरी करें यदि
हम तो वो होगा नष्ट।
जीवन हमारा व्यग्र
अत्यातुर हो रहा है
हैं हमारी लालसायें
एकों-एक महातीव्र
क्योंकि घंटा बजाता है
बिछुवा होने का काल,
मन में यों सोच भैया
मनाता रह आनंद।
समय नहीं है हमें
वस्तुएं पकड़ने को
दलने मलने को त्यों

फेंकन को धूलि माहि।
कर रही हैं घड़ियां
शीघ्र शीघ्र शीघ्र कूच
उनके वक्षःस्थल में
छुपाता उन्होंके स्वप्न।
जीवन है स्वल्पतर
हमारा, वह देता है—
दिन, किंतु बहुतही—
थोड़े, प्रेमके निमित्त,
कामके लिये जो होता
और कड़ी मजूरी को
होता तो लम्बा अनंत,
मन में यों सोच भैया
मनाता रह आनंद।
लगती मधुर हमें
सुंदरता है, क्योंकि वो—
नृत्य करती है, सम—
अचिर स्थायी लयमें
हमारे जीवन-संग,
ज्ञान है हमारे लिये
अलभ्य अमूल्य निधि

क्योंकि उसे पूर्णतया
पा लेने को भलीभांति
मिलने का कभी नहीं
हमको है अवकाश,
आद्यन्त हीन शाश्वत
सनातन स्वर्गमे ये
सकल किये जाते हैं
और होते हैं अपूर्ण,
जाते हैं रक्खे मौतसे
ताजा, सदा सर्वदाको
मायामय मोहभरे
किंतु पृथ्वीके कुसुम;
मनमें यों सोच भैया
मनाता रह आनन्द !

---

(६६)

भटकता फिरता हूं
खोजने में हेममृग ।
हँसो भले मेरे मित्रो !
पीछे ही पड़ा हूं किन्तु–

मैं उस आभास के, जो
देता है चक्कर मुझे
जहां तहां निरन्तर:—
पहाड़ी और कन्दरा
मैंने दौड़ पार की हैं
नामहीन देशों का भी—
किया है मैंने प्रवास,
क्योंकि मैं घूम रहा हूं
हेममृग के निमित्त ।
आते हो बजार में, हो—
करते खरीद तुम्ह
लेजाते हो घर माल
किन्तु किया स्पर्श मेरा
गृहहीन पवन की
लहरियों के जादू ने
न जाने कहां है कब !
मुझसे सम्बन्ध वाला—
जो कुछ था मैंने सब
पीछे दूर दिया छोड़,
पहाड़ी और कन्दरा
मैंने दौड़ पारकी है

नामहीन देशों का भी
मैंने किया है प्रवास,
क्योंकि मैं घूम रहा हूं
हेममृग के निमित्त।

---

(७०)

आता है मुझको याद
एक दिन बचपन में
तिराई थी कागज की
मैंने झरे बीच नाव,
नमीवाला असाढ़ का
दिवस था और मैं था
अपने ही खेलने मे
अकेला प्रसन्नचित्त,
तिराई थी कागज की
झरे बीच मैंने नाव।
चढ़ आये एकाएक
घने बादल तूफानी
झपाटे से चली वायु
और बरसात गिरी
जोरों से मूसलधार,
लाल लाल गदलाये

पानी के ऊपर चले
बदा भोर का प्रवाह
डूब गई मेरी नाव।
बड़े ही दुख से मैंने
सोचा मेरे मन में यों:—
आया मेहका तूफान
मेरा हर्ष मिटाने का
लेकर बस उद्देश,
उसके सब दुर्भाव—
मुझ से थे विपरीत।
घनघोर घटावाले
असाढ़ के दिन आज
वे गये बहुत दूर,
उन सब खेलों पर
कर रहा हूं विचार
जिनमें जिन्दगी में मैं
पाया था सकल हार।
बड़े ही दुखके साथ:—
—जब मुझे आई याद
मेरे बीच डूबी हुई
मेरी कागज की नाव,
तब मैं मेरे दैव को

उसके दगों के लिये—
देता था दोष, उसने
क्योंकि मेरे साथ, नाना—
खेले थे कपट खेल।



(७१)

बाकी है अब भी दिन
मेला न हुआ है पूरा
वो मेला—हो रहा है जो—
नदी के किनारे पर।
मुझे भय था कि मेरा—
वक्त पूरा होगया है
होगया है और मेरे
अत्य पैसे का भी अन्त,
किन्तु नहीं मेरे भाई !
अब भी है मेरे पास
बचा खुचा कुछ कुछ,
मुझको मेरे भाग्य ने
ठगा नहीं है सर्वथा
प्रत्येक वस्तु निमित्त।
क्रय-विक्रय हो चुका
लेन-देन हुआ साफ़



दोनों तरफ़ का, और–
आगया है मेरे लिये
घर जाने का समय,
किन्तु ओ दरवाजे के–
जगाती ! क्या मांगता है–
जगात का महसूल ?
मतडर मतडर
अब भी है मेरे पास
बचाखुचा कुछ कुछ;
मुझको मेरे भाग्य ने
ठगा नहीं है सर्वथा
प्रत्येक वस्तुनिमित्त ।
पवन में आई शान्ति
दिखाती है, बड़ा भारी—
तूफ़ान आने का भय,
गर्जना करते हुए
पश्चिम में घन त्यों न
बताते शुभ भविष्य ?
देख रहा है सलिल
शान्त, पवन की बाट,
मुझपर छावे रात
पहले ही उससे मैं

करता हू बड़ी जल्दी
होने को नदी के पार,
चाहता है नाववाले
उतराई के तू दाम ?
हां, भाई बहुत अच्छा
अब भी है मेरे पास
बचाखुचा कुछ कुछ,
मुझको मेरे भाग्य ने
ठगा नहीं है सर्वथा
प्रत्येक वस्तु निमित्त ।
विटप के नीचे एक—
रस्ते की ओर भिक्षुक
बैठता है, और मेरे
देखता है मुख-ओर
दैन्य भरी आशा साथ ?
सोचता है वहः—मैं हूं—
दिवस की कमाई से
बड़ा भारी धनवान ।"
हां भैया बहुत अच्छा
अब भी है मेरे पास
बचाखुचा कुछ कुछ,

मुझको मेरे भाग्य ने
ठगा नहीं है सर्वथा
प्रत्येक वस्तु निमित्त ।
बढ़ाती है राततम
सड़कें है सुनसान
जुगनू चमकते हैं
डाल-डाल पान-पान,
कौन है तू आता है जो
मेरे पीछे हौले हौले
चोर-सा उठाता पद ?
आह ! जानता हूं मैं, है—
वह तेरी वासना ही
लेने को मुझसे लूट
मेरा सब माल ताल.
करूगा तुझको नहीं
मैं निरास बे-मुराद,
क्योंकि अब भी रक्खे हूं
बचाखुचा कुछ कुछ,
मुझको मेरे भाग्यने
ठगा नहीं है सर्वथा
प्रत्येक वस्तु निमित्त ।

पहुचा हू घर पर
बीत गये आधीरात,
खाली ही है मेरे हाथ,
करती है प्रतीक्षा तू
मेरे दरवाजे पर
आतुर निगाह डाल
निद्राहीन और शात,
भयभीत पंछी सम
सीने मे मेरे आकर
दबजाती है तुरंत
अत्यातुर प्रेमसाथ।
अयि अयि मेरे प्रभो
अब भी है बहु शेष,
मुझको मेरे भाग्यने
ठगा नहीं है सर्वथा
प्रत्येक वस्तु निमित्त।

---

(७२)

बड़े ही कठिनतर
श्रम से दिनों से मैंने
बनाया मंदिर एक,
उसके नहीं थे द्वार,

खिड़कियां न थीं कुछ,
उसकी दिवारें बड़ी
मोटी बनाई थीं, कड़े
कड़े पत्थरों से दृढ़ ।
और सब भूल गया
छोड़ दिया सारा विश्व,
आनन्द समाधि बीच
होके मग्न एकटक
देख मैं रहा था मूर्त्ति
किया वेदी पृष्ठपै था—
जिसे मैंने प्रतिष्ठित ।
भीतर की ओर सदा
तमिस्रा–ही–तमिस्रा थी
सुगन्धमय स्नेह के
दीपक-ही-दीपक से
चमक रही थी वह,
निरन्तर होती हुई
सुगंधित धूपधूम
मेरे हृदयकी भारी
धड़कन देती रोक ।
निद्राहीनता के साथ

बड़ीही सावधानी से
दीवार पै खोदे मैने,
—बड़े ही चित्रविचित्र
अचरजकारी—चित्र,
अटपटी लीकें खींचः—
पांखोंवाले घोड़े खींचे,
जनमुख खींचे पुष्प,
खींची देहधारी स्त्रियां
नागकन्या के समान,
कहीं भी न छोड़ा स्थानः—
जहां से प्रवेश पावे
पंछियों के रम्य गान,
पानों की मर्मर तान,
काम करने में मग्न-
हुए, गावों का या नाद।
केवल निनाद एक
उस्के काले गुम्बज में
होता था प्रतिध्वनित,
जो था मेरे पढ़े हुए-
छू-मन्त्रों का परिणाम।
तीव्र और शान्त मेरा

सूक्ष्मतर अनीदार
झाल-सा होगया चित्त
समाधि में पाये लय
एकाएक मेरे ज्ञान ।
जान न मुझको पड़ा
होगया व्यतीत कैसे
तबतक सारा काल,
जबतक मन्दिरपै
बड़ी भारी शिलाओं—सी
गिरके न टकराईं
भारी कर्ण्णकी दँताड़—
और हृदयदेश में
दर्दने न दिये दंश।
फीका देख पड़ा और
शरमाया हुआ दीप,
दीवारों की तसवीरें
संकलित स्वप्नों की—सी
ताकताक देखती थीं
व्यर्थ ही प्रकाश—ओर:
मानो छुपजाने की वे
करती हैं अभिलाष—
सम्पूर्ण, अपने आप ।

देखा मैंने वेदीपर
प्रतिमा की ओर, मुझे
देख पड़ी प्रतिमा वो
मंदमंद मुसकाती
आनन्द मनाती और
पाते हुए ईश्वरका
सुंदर सजीव रम्य
चैतन्यपूरित स्पर्श;
किया था निरोध मैंने—
जिसका रजनी वह
फैलाके, पांखें अपनी
उड़ होगई अदृश्य।



(७३)

नहीं है अनन्त तेरी
महेश्वरीय सम्पत्ति
मेरी दुखदर्दमयी।
उदासीन मातृभूमि!
तेरे बालकों का पेट—
भरने को करती है
कड़ा श्रम तू; है किन्तु
बहुत थोड़ी खुराक,



दैनगी प्रसन्नताकी
तेरे पास जितनी है
है न वह परिपूर्ण ।
खिलोने बनाती है तू
तेरे बालकों के लिये,
है सब कच्चे नाज़ुक,
आशायें हमारी तू न
पूर्ण कर सकती है
परन्तु इसके लिए
तुझको क्या मैं दूं छोड़ ?
दरद की छाया भरी
तेरी मृदु मुसक्यान
मेरे दृगों के लिये है
मधुर मधुर तर ।
जानता नहीं है तेरा
प्रेम सम्पूर्णता को जो
है मेरे हियको प्रिय ।
तेरे वक्षःस्थल से तू
पाल पोस हमें, कर–
देती है प्राणों से युक्त
परन्तु नहीं अमर:

कारण यही है तरी
आँखें क्यों ये सर्वदा को
रहती हैं निद्राहीन ।
अनेको युगों से काम—
करती चली आती है,
रंग और गानसाथ
अबतक किन्तु तेरा
बन नहीं पाया स्वर्ग
पर उस स्वर्ग का है
हुआ कुछ फीका फीका
केवल सूचनमात्र ।
तेरे विनिर्माण किये
सुन्दरताके विश्वपै
अश्रुओं की है झलक ।
भरता ही रहूंगा मैं
तेरे बैठे से दिलमें
मेरे निरंतरगान
और तेरे प्रेमबीच
मेरा भर दूंगा प्रेम.
मिहनत मजूरीसे
करूंगा तेरा पूजन ।



देख मैं रहा हूं तेरे
व्यग्र चहेर को और
तेरी दुःखित धूलिको
करता हूं पूर्ण प्यार,
जन्मभूमि ! मातृभूमि ।

---

(७४)

विश्वके सार्वजनिक–
बड़े दीवानखाने में
सादा एक तृणखंड
बैठा है समान जगै
सूर्यकी--किरणों के संग
और, मध्यरजनी के
चमकते तारों साथ ।
ऐसे ही बैठक लेते
विश्वके हृदय में है
मेरे गान बदलों के
वनों के गानों के साथ ।
किन्तु धनशाली जनो !
सूर्यके हृष्ट स्वर्ण के

और अद्भुत चन्द्र के
बड़े भारी प्रकाशके
मामूली महत्व में भी
तुम्हारी सम्पत्तिका, है
नहीं जरा भी विभाग,
उसपै गिरे नहीं है
सब से मिलनेवाले
गगन के आशीर्वाद ।
और जब आती मौत
पीली पड़जाती वह
मुरझा जाती है और
धूल में जाती है मिल ।

---

(७५)

होनेवाले सन्यासी ने
आधीरात के समय
ढिंढोरे में प्रकटाया:—
"घर वार छोडने का
यही-यही है समय !
आह ! चिरसे कौन था



इतने समय तक
जकड़ रखने वाला
मुझे यहां घर बीच ?"
धीमे बोले प्रभुः—मैं था,
थे परन्तु मनुष्य के
रुंधे हुए दोनों कान,
सो रही थी उसकी स्त्री
लगा शिशु को सीने से
बिस्तर की एक ओर
लेती हुई शांतनींद,
कहा उस पुरुष ने
कौन हो तुम्ह जो मुझे
इतने समय तक
बनाते थे मूर्ख मूढ़।
फिर भी हुई अवाजः—
'वे हैं प्रभु' किन्तु सुनी
उसने न कोई बात।
चिल्ला उठा सपने में—
पकड़ते हुए, बड़े—
ज़ोरो से माताको, बाल
आज्ञा जगदीश ने दी:—

" ठहर ठहर मूर्ख
मत छोड़ तेरा घर।"
किन्तु उसने अब भी
ईशवाक्य को सुना न।
दीरघ निसासा छोड़ा
कहा और ईश्वर नेः—
किसलिये मेरा दास
खोजता फिरता मुझे
मुझको ही छोड़-छाड़ ?

(७६)

मन्दिर के साम्हने था
मेला खूब भरा हुआ
बहुत शीघ्र प्रात से
आ गिरा था वर्षाजल
और दिन पाया अस्त।
सब-की-सब भीड़ के
सकल आनन्दों से थी—
विशेष प्रकाशमान—
मन्दमन्द मुसक्यान—
चमकवाली, बालाकी;

जिसने एक पाई में
खरीदीथी हथेली-से
तालपत्र की बनाई
सिसोटी परमवाद्य ।
इस सिसोटी के तीव्र
आनन्द ने बहादिये
ऊपरही अन्य सब
कोलाहल अट्टहास ।
आरही थी मनुष्यों की
टोलीपै अनन्त टोली
करती हुई अपूर्व
आपस में धक्काधूम,
कीचसे भरा था मार्ग,
आया था नदी में पूर,
जल में गए थे डूब—
खेत, बिना सांस लिये
होरही थी बरसात ।
टोलों के सब दुःखों से—
विशेषतर, छोटे से
एक बच्चे का था दुःख:—
रंगी हुई एक छड़ी—
खरीदने के निमित्त,

नही था उसके पास—
नाम को भी पैसा एक।
अत्यन्त कातरता से
दूकानो को देखदेख
उसकी उस दृष्टि ने
इस सारी मानवों की—
मंडली को कर दिया
अत्यन्त करुणापूर्ण।

(७७)

एक श्रमजीवी और
उसकी स्त्री पश्चिम से
आये, खान खोदने में—
लगे, ईंटें घड़ने को
भट्टा बनाने निमित्त।
उनकी बेटी छोटीसी
होकर नदीमार्ग से
जा रही है घाटपर,
वहां वह घड़े और
कटोरों को-बर्तनों को
मांजती थी घिसती थी।

झरती थी समुज्ज्वल
जिसका नहीं था अन्त।
उसके छोटे भाई का
मुड़ा हुआ था मस्तक
गार सने अगवाला
यों था भूराभूरा नग्न।
बहन के पीछे पीछे
गया शान्त भावसे हो,
ऊंचे नदी तट-पर
—करता हुआ प्रतीक्षा—
बैठा उसकी आज्ञा मान।
घर पर पीछी वह
जारही थी लौटकर,
शिर पर लिये हुए
भरे—कुंभका थी भार,
उसके बायें हाथमें
घड़ा एक तांबे का था
चमकता शानदार,
बच्चे को लिये जाती थी
दहने करसे और।
वह उसकी माताको

बड़ी नम्र सेविका थी
घर गृहस्थी के सारे
कर्तव्यों के वजन से
हुई थी वजनदार।
एक दिन मैंने देखा
उस नग्न बालक को
बैठा हुआ फैलाकर
बहुत ही लम्बे पांव,
मुट्ठी भर रेणुका से
उसकी बहन बैठी
मालिमें मांजती थी
रगड़ रगड़कर
पीने के लोटे को खूब
चारों ओर फेरफेर।
पास ही मृदुल रोम—
वाला, मेमना था खड़ा
एक दृष्टि बना सीधा
तटको रहा था ताक।
आगया समीप वह
जहां बालक बैठा था
और बैं-बैं कर उठा



बुलन्दी से एकाएक,
बालक चमक उठा,
करने लगा चीत्कार।
बहनने दूर डाल
बरतन मांजने को
जल्दी से लगाई दौड़।
उसने निज भाई को
लिया एक बगल में
दूसरी में मेमने को
दबालिया अच्छे और
उन दोनों के बीच में
बांटते अपना प्रेम।
एक बन्धन में बांधी
माया ममताके, दृढ़,
पशु और मानव की
उसने और, सन्तान।

---

(७८)

दिवस बैसाख के थे
जान पड़ता था बड़ा
अन्तहीन दीर्घतर
महा गरम मध्यान्ह।

जब मैंने बुलाने की
—"प्यारी आ प्यारी आ—" सुनी
नदी-ओर से आवाज,
तब मैंने पुस्तक को
बन्द की खोली खिड़की
देखने को उस ओर ।
देख पड़ी मुझे वहां
—शान्त खड़ी हुई भारी
देखती आतुरता से
कीचड़ में सनी हुई—
नदी पास एक भैंस
और, एक नोजवान
घुटने-घुटने पानी में
खड़ा हुआ न्हिलाने को
उसे करता पुकार ।
मुझे आई मुसक्यान
और मेरे हृदय मे
हुआ माधुरीका स्पर्श ।

(७१)

आश्चर्य करता हूं मैं
मनुष्य और पशुकी

कहां पर छुपी हुई
पहचान की है हद,
बोल सकने के योग्य—
भाषा को न जानता है
कुछ जिनका हृदय।
बहुत ही दूर गये
जग-निर्माण-प्रातमें
कौन से विधिविहित—
स्वर्ग में होकर मार्ग—
निकला, सादा, सरल:—
जिसके द्वारा उनके
एक दूसरे से, पूर्ण—
मिल जाते हैं हृदय।
यद्यपि दीर्घकाल से
सगाई भुलादी गई
उनकी; तथापि, नित्य—
शाश्वत सहचारके
मिटे न हैं पद्‌चिन्ह।
मंदस्मृति है होजाती
अन्ततक एकाएक
शब्दों से रहित कुछ

संगीतों में सुप्रकट,
और लखने लगता—
पशु है विश्वासकर
मानव मुखकी ओर
प्रीति पूर्ण दृष्टिडाल
और, देखता है नीचे—
मनुष्य पशुनेत्रों को
बड़ी भारी ममतासे
हो प्रसन्न प्रेम साथ।
बतलाता है यही:—कि
दो मित्र मिल रहे हैं
बुरखे में छुपे हुए,
और एक दूसरे को
—बदला वेश होने से—
जान न रहे हैं साफ़।

---

(८०)

अपनी निगाहों से तू
परम सुन्दरी बाले !
लूट सब सकती है
कविके सितार-वीणा—



सारंगी से निकलते
गानतान की सम्पत्ति।
किन्तु उनकी आवाको
सुनने के निमित्त तू
रखती नहीं है कान,
इसी लिये आया हूं मैं
आवा करने को पास।
गिरा तेरे चरणों पै
सकती है विश्वमें तू
भारी दर्पभरे शिर,
किन्तु तेरी चाहका है
एक, यश से अज्ञात;
जिसे तूने पूजनके
निमित्त है लिया चुन,
इसी से करता हूं मैं
तेरा पूर्ण आराधन
सब प्रकार पूजन।
पूरन कलायें तेरे
बाहुओं की, महाशोभा—
बढ़ा सकती है अच्छे
बड़े बड़े राजाओं के—

सम्राटों के ठाट-बाट
जरासा करके स्पर्श;
किन्तु हन्त उपयोग
करती है उनका तू
झाड़ने बुहारने में
धूल और दीनवर
करनेमें स्वच्छ शुद्ध,
इसीसे मैं होगया हूं
आदरसे भरे हुए
दबदबे मे विलीन
विस्मय से परिपूर्ण।



(८१)

हौले हौले धीमेधीमे
कानों में क्यों करता है
"घुसपुस घुसपुस"
ओ मृत्यु ! ओ मेरे मृत्यु !
जब सायंकाल हुए
फूल नीचे गिरते है
आते हैं पीछे खूटों पै—
पशुओं क सारे वृन्द,

आता है तू चोर-सम,
छुपे-छुपे मेरे पीछे
कहता है शब्द, जो न
आते हैं समझ मांहि।
है क्या यही:-मुझे कैसे—
मन्दमन्द मर्मर् और
ठंडे ठंडे चुम्बनों के
नशे से लगन लगा
लेवेगा अवश्य जीत?
ओ मृत्यु! मेरे मृत्यु!
क्या हमारे विवाह में
गर्व करने के योग्य
मनावेंगे न उछाह?
फूलों की मालाओं से
बांधेगा न नीके क्या तू
घुंघराले भूरे बाल?
नहीं है क्या नामको भी
आगे चलने को कोई
तेरा झंडा उठाकर?
तेरी लाल मशालों से
उजियाली तेजवाली

होवेगी नहीं क्या रात ?
ओ मृत्यु ओ मेरे मृत्यु !
निद्राहीन रात मे आ,
शंखों का आ लिये नाद,
सजा मुझे रमणीय-
वेश और भूषासे तू
करले हस्त मिलाप
मेरा, और ले-ले साथ।
हिनहिनाते चंचल-
तुरंगों से जुती हुई
मेरे दरवाजे पर
रख बग्घी को तयार,
हटा मेरे घूंघट को
देख चहरे की ओर
मेरे, बड़े हर्षसाथ
ओ मृत्यु ! ओ मेरे मृत्यु !

---

(८२)

मैं और मेरी नवेली
हम दोनों: खेलने को
हैं, आज मौतका खेल।
छारही अँधेरी रात,



गगन में है स्वच्छंदी—
बादल, जलनिधिमें
गरज रही हैं मौज।
हमने हमारी दी है—
छोड़ सपनों की सेज,
खोलदिया दरवाजा
निकल आए बाहर
मैं मेरी सुन्दरी और।
बैठते हैं फूलेपर
हम कि झोंके आंधीके
जोरसे आ धक्का देते
हमारे पीछे की ओर।
मेरी प्यारी नववधू
डर और हर्षसाथ
चौंककर खड़ी होती
चूजती हुई सीनेसे
मेरे जाती है चिपक।
मैंने चिरकालतक
उसकी सेवा शुश्रूषा
की है बड़े स्नेहसाथ।

फूलों की बनाई सेज
दरवाजे किये बन्द
रोकनेके लिये मारी
उसके नयनों पर
पड़ता प्रकाश तेज।
मैंने बड़ी कलाओं से
उसको अवरपर
चूमा सभ्यता के साथ
और, उसके कानों में
हौले हौले मृदुता से
कीं, मधुर मीठी बात–
तबतक, जबतक
होगई वह न-पाके
अंगअंग का शैथिल्य—
अर्द्धमूर्च्छित मोहित।
खोसीगई अनिर्वाच्य
अनिश्चित माधुरीकी
अनंत धुंधमें वह।
उसने मेरे स्पर्शोंका
दिया नहीं प्रयुत्तर,
उसे जगाने में मेरे

अशक्त होगये गान
आजकी रात हमको
निजन जंगल मे-से
तूफान भरी आंधीका
आचुका है आमन्त्रण,
थर्रागई मेरी प्रिया
और खड़ी भी होगई
बाहर आगई और
पकड़े है मेरा हाथ,
उड़ते हैं पवनकी
लहरों में उसके बाल,
फहराता है घूंघट
और, उसके सीने पै
खड़खड़ाता है हार,
मृत्युका धक्का उमे
लाया है जीवनबीच,
मुख साम्हे मुख किये
हियसे लगाये हिय
मै और मेरी प्रेयर्स
दोनों ही हैं विद्यमान ।



(८३)

पहाड़ों की ओर वह
रहती थी मकई के
खेतसे सटकेलगी
उस झरे के समीपः—
अनेकों हँसते हुए.
सोतोंको बहाता था जो
बड़े पुराने वृक्षोंकी
घनी घनी छायाबीच।
आई थीं वहां नारियां
अपने भरने कुंभ
बैठे थे प्रवासी नाना
लेनेके लिये विश्राम
और करने को बात।
प्रतिदिन करती थी
काम, रचती थी स्वप्न,
सुनने को तानलय
नन्हे-से बन्धुसे बने
निर्झर के सर्वकाल।
बादलों से छाई हुई
टेकर से अनजाना

एक सायंकाल को या
आया एक मुसाफिर,
उसके बालोंके गुच्छ
थे गुच्छली खाये हुए
जहरीले सांपों सम।
विस्मयमें आके पूछा
हमने:—"हो तुम्ह कौन ?"
उसने न दिया जबाब,
किन्तु. कलकल कर
बहते हुए झरेके
बैठगया जाके पास
और चुपचाप लगा
देखनेमें, ताकताक
उस झूपड़ीकी ओर
जिस्में रहती थी वह।
भयके मारे हमारे
हिय उठे धूजधूज
और हम लौटे घर,
उस समय थी रात।
दुसरे दिन प्रातमें

तालाब्के पासके
भोरपर आईं स्त्रियां
पानी भरनेको जब,
तब उन्होंने उसकी
झोंपड़ी का पाया द्वार
खुला, किन्तु सुनपाईं
नहीं उसकी अवाज,
कहां था मधुरतर
सस्मित उसका मुख ?
लुढ़क रहा था खाली
पृथ्वी तलपर कुम्भ,
और, उसका दीपक
जलके हुआ था खाक
कोने में अपने आप।
किसी ने न जाना वह
कहां उड़ चली गई
होने के पहले प्रात;—
और वो अजनबी भी
कर गया था प्रयाण।
सूरज रहा था तप
गई थी पिघल बर्फ

और हम निर्झर के—
बैठे हुए थे समीप
कर रहे थे रोदन।
हृदय में होरहे थे
आश्चर्य चकित हमः—
पृथ्वी पर है क्या कोई
सोत, जहां पर वह
गई है और वो जहां
भर सकेगी स्व-पात्र
इन महागरमी के—
पियासे दीनों के बीच ?
और, उदासीनता से
पूछते थे आपसमें
एक दूसरे से हमः—
"इन पहाड़ियों के भी—
परे है क्या ऐसा देश
जहां हम करें वास ?"
रजनी थी गरमीकी
दक्षिण की ओरसे थी
चलती वायु-लहर।

बैठा हुआ था मैं उसके
उजड़े मकानबीच
अबतक जहां पै था
रक्खा अनजला दीप।
निगाहों के साम्हने से
पहाड़ियां हुईं लुप्त
—एक ओर हटादिये
गये परदोंके तुल्य—
[illegible] जो आरही है
यह तो [illegible] वही वही
कैसे है तू मेरी बेटी?
है भली चंगी? प्रसन्न!
किन्तु तुझे मिलता है
इस खुले गगनमें
कहां पर समाश्रय?
अफ़सोस? यहां पर
तेरी प्यास बुझाने को
है न हमारा निर्झर।
उसने कहा:—'है यहां—
वही गगन, केवल



सीमा को करनेवाली
पहाड़ियों से है मुक्त,
नदीके रूप में वही
बहरहा है निर्झर,
वही है मही विस्तृत —
बनी हुई, लम्बे चौड़े
मैदानका पा स्वरूप:
है यहां पै सब कुछ।"
डालके निसासा मैंने
किया भारी पश्चात्ताप: —
"केवल नहीं हैं हम।"
ग्लानि से वो मुस्कराई
और बोली: "तुम्ह! तुम्ह!
हियमें हो मेरे तुम्ह।"
जागरित हो गया मैं
सुनाई पड़ी अवाज—
निर्झर की झरझर,
और, देवदारुओं का
सुन पड़ा सन्-सन् नाद
बस रात के समय।

---

(८४)

हरेहरे पीलेपीले
चावलों के खेतों पर
शरदके बादलों की—
उड़ी चली जाती छांह,
पीछे से पकड़ने को
उड़ा जारहा था तेज
हो थी रही धूप-छांह।
मधुकी चुसकियों का
लेना, मधु मक्षिकायें
—प्रकाश से छकी हुई—
गईं सब भूलभाल,
उन्मत्तपनके साथ
फड़फड़ाती पाँखों को
करती थीं गुनगुन।
द्वीप में नदीके महा—
आनन्दके करती है
केवल न कुछको ही
बतकें महान शोर।
आज इस प्रभातमें



भाइयो मत जाने दो
किसी को भी पीछे घर
और करने दो न काम।
नीले गगनको हमें
घूमकर दबाने दो,
जितने दौड़ें उतनी
दिशा को लेने दो लूट।
पवनमें तैरता है
बड़े भारी जोशसाथ
—पूर से फेन-सा-हास,
भाइयो बितावें हम
बिना किसी कामना के
मधुरतर-गानों में
आज अपना प्रभात।



(८५)

सौ-सौ बरस से मेरी
कविताओं का वाचक
पढ़ने वाला है तू कौन ?
भेज न सकता हूं मैं

तुझे, निर्झरकी इस—
समृद्धि में से, केवल
एकमात्र भी कुसुम
और उन बादलों से
एक भी सुवर्ण रेख।
खोल तेरे सब द्वार
और देख सब ओर
दूर-दूर, बड़ी दूर।
कुसुमोंसे लदे हुए
तेरे फूलबाग में-से
सौरभ से महकती
स्मृतियां,—सो बरससे
पहले अदृश्य हुए
कुसुमों की—चुन, चुन।
तेरे हृदयानन्द मे
मना वही भलीभांति
सजीव परमानन्द:—
एक रम्य वसन्त के
प्रभात में जो पाया था
गाते हुए नाना गान,



भेजते हुए मधुर—
सुमधुर ध्वनि तान,
एकसो बरसोंके भी
काल को करता पार।



शुद्धिपत्र।

पृष्ठ-पंक्ति-	अशुद्ध-	शुद्ध-
३८-१२	नें	न
५८-३	आने	आना
६४-२	यम्चक	याचक
७४-१६	के आगे पंक्ति चाहिये:—	और मुझे फैलाने दो
७५-१-३	कहे	कह
,,-७	मेरे	मेर
,,-११	खसम	रवसम
७६-६	नमसुका	न मुसका
८०-२-११	जान	जा न
८१-२	,,	,,
८३-१२	वक्त	वक्र
,,-१६	उसनें	उसके
,,-,,	ओठों न	ओठोंने
,,-१८	थरथारा	थरथरा
,,-२०	वे	वह
८६-११	पथिनी	पद्मिनी
६१-१६	निकल	निकाले

६४-१८	की	कि
६५-७	उदद्रता	उद्धतता
६७-१८	विघा	विद्या
६८-१३	जो	हो
१०४-२	भूल भू-लैया	भूलभुलैयां
,,-१२	प्रबलतासे	हिला हिला— करेंगे प्रबलतासे.
,,-१६	तुम्हें	तुम्ह
१०७-१०	चलतासे	चपलतासे
,,-११	तु	तू
,,-२०	तेरा	तेरी
१०८-७	जोवन	जोबन
,,-११	है	हैं
,,-१४	पद्यपत्र	पद्मपत्र
१०९-७	धारोंओर	चारोंओर
,,-६	आवसन्त	आ वसन्त
,,-१६	किसका	किसीका
११०-४	तुम्हें	तुम्ह
,,-१५	हाता	रहा ताक
१११-७	होंभी	होंगी
,,-८	चहरे पैसे	चहरेपै-से



११२-३	जारों	जोरों
११३-५	मुझे	मुझे– तेरी मोहिनीसे मुक्त ।
,,-१८	लुटने	लूटने
११६-३	तु	तू
,,-४	शतको	रातको
,,-६	मैं	हे !
,,-१४	श्रून्य	शून्य
११७ ४	आह्ड:	आह
,,-१७	सुख	सूख
११८-१०	का	को
१२१-१८	सुत	सूत
१२४-१३	कमरी	कुमरी
१४६-६	हुई थी	थी
१५१-११	बात सुन	सुन
१५३-१२	सनरी	सुनेरी
१५४-१६	बिछवा	बिछोह
१५६-१३	मनम	मनमें
१५६-२०	भरे	झरे
१६०-११	अत्य	अंत्य
१६२-१५	किसीमे	किसीने